ग्रामीण पाठकों के लिए

ग़बन

प्रेमचंद

संक्षिप्तीकरण
अब्दुल अज़ीज़

अनुवाद
सिबग़तुल्लाह खां

चित्र
दीपक मैत्रा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

बरसात के दिन हैं। अभी तीसरा ही पहर है पर ऐसा लगता है जैसे शाम हो गई। आमों के बाग़ में झूला पड़ा हुआ है। लड़कियां भी झूल रही हैं और उनकी माएं भी। उस समय एक बिसाती आकर झूले के पास खड़ा हो गया। उसे देखते ही झूला छोड़ कर छोटी-बड़ी सब लड़कियों ने उसे घेर लिया। बिसाती ने बक्स खोला और चमकती हुई चीज़ें निकाल कर दिखाने लगा। सभी ने अपनी अपनी पसंद की चीज़ें छांटनी शुरू कीं। एक बड़ी-बड़ी आंखों वाली लड़की ने वह चीज़ पसंद की जो उनमें सबसे ज्यादा सुंदर थी, वह फ़िरोज़ी रंग का चंदनहार था। मां ने बिसाती से दाम पूछे, उसने बीस आने बताए।

मां ने कहा, "यह तो बड़ा महंगा है। चार दिन में उसकी चमक-दमक जाती रहेगी।"

बिसाती बोला, "बहू जी, चार दिन में तो बिटिया को असली चंदनहार मिल जाएगा।"

हार खरीद लिया गया। उसे पहन कर वह सारे गांव में नाचती फिरी।

लड़की का नाम जालपा था और मां का मानकी।

मुंशी दीनदयाल इलाहाबाद के एक छोटे से गांव में रहते थे। वह ज़मींदार के मुख़्तार थे, गांव में उनकी धाक थी। वेतन पांच रुपया था, मगर ठाठ से रहते थे। जालपा उन्हीं की लड़की थी। पहले उसके तीन भाई और थे मगर वह अब अकेली थी। कहते हैं, मुख़्तार साहब ने एक ग़रीब किसान को इतना पिटवाया था कि वह एक सप्ताह के अंदर मर गया और साल के अंदर मुंशी जी के तीनों लड़के जाते रहे।

मुंशी जी जब कभी बाहर जाते तो जालपा के लिए कोई-न-कोई ज़ेवर ज़रूर लाते। इसलिए जालपा ज़ेवरों से ही खेलती थी, वही उसके खिलौने थे। वह शीशे का हार अब उसका सबसे प्यारा खिलौना था। एक दिन मुंशी जी मानकी के लिए चंदनहार लाए।

जालपा को अपना हार फीका लगने लगा। बाप से बोली, "मुझे भी ऐसा हार ला दीजिए।"

मुंशी जी ने कहा, "ला दूंगा बेटी।"

बाप की बातों से जालपा का मन न भरा। उसने मां से कहा, "मुझे भी ऐसा ही हार बनवा दो।"

"इसमें तो बहुत से रुपए लगेंगे।"

"तुमने अपने लिए बनवाया है तो मेरे लिए क्यों नही बनवाती?"

"तेरे लिए ससुराल से आएगा।"

जालपा शरमाकर भाग गई। पर यह बात उसके दिल में पत्थर की लकीर हो गयी। इस तरह हंसते-खेलते सात साल बीत गए।

मुंशी दीनदयाल के परिचितों में एक बाबू दयानाथ कचहरी में पचास रुपए के नौकर थे। दीनदयाल का अदालत में रोज़ ही दयानाथ से कोई न कोई काम पड़ता रहता था। वो चाहते तो दीनदयाल से हजारों वसूल करते पर कभी एक पैसा न लिया। क्योंकि वो रिश्वत को पाप समझते थे। उनके दिल में यह बात बैठ गई थी कि पाप की कमाई पाप में जाती है। उस ज़माने में पचास रुपए में पांच आदमियों को पालना बहुत मुश्किल था। लड़के अच्छे-अच्छे कपड़े को तरसते और पत्नी गहनों को। बड़े लड़के रमानाथ ने दो ही महीने कालेज में रहने के बाद पढ़ना छोड़ दिया था। बाबू साहब ने साफ कह दिया था, मैं तुम्हारी डिग्री के लिए सारे घर को भूखा और नंगा नहीं रख सकता। पढ़ना चाहते हो तो अपनी मेहनत से पढ़ो। रमानाथ दो साल से बेकार था। शतरंज खेलता, सैर सपाटे करता। अमीर दोस्तों के सहारे शौक़ पूरे होते रहते थे। मुंशी दीनदयाल ने रमानाथ को ही जालपा के लिए पसंद किया। दयानाथ लड़के की शादी नहीं करना चाहते थे, उनके पास रुपए न थे। मगर जागेशरी की त्रियाहट के

सामने उनकी एक भी न चली। जागेशरी बरसों से बहू के लिए तड़प रही थी। ईश्वर को मनाती थी कि कहीं से संदेश आए। दीनदयाल ने संदेश भेजा तो उसको आंखें सी मिल गईं। उसने सारा ज़ोर लगा दिया और आखिर में उसकी जीत हुई।

मुंशी दीनदयाल उन आदमियों में से थे जो सीधों के साथ सीधे होते हैं मगर टेढ़ों के साथ टेढ़े ही नहीं; शैतान हो जाते हैं। दयानाथ की शराफ़त ने उन्हें मोह लिया। उनका इरादा था कि एक हज़ार में शादी की सारी रस्में पूरी कर दें मगर एक हजार टीके में ही ले आए। दीनदयाल की उदारता ने दयानाथ को भी उदार बनने पर विवश किया। चढ़ावे के लिए कोई तीन हज़ार का सामान बनवा डाला। सर्राफ़ को एक हज़ार नगद दिया और बाक़ी के लिए एक सप्ताह का वादा किया। फिर भी चंदनहार की कमी रह गई।

रमानाथ और उसके दोस्त चाहते थे कि बारात धूमधाम से जानी चाहिए। इसके लिए उत्कृष्ट प्रकार की आतिशबाज़ियां वनवाईं बाजे-गाजे का भी अच्छा आयोजन किया। बारात की धूमधाम देखकर हर एक के मुंह से वाह-वाह निकली। बारात पहुंची। सबने खाना खाया। आधी रात को फिर बाजे बजने लगे। मालूम हुआ कि चढ़ावा आ रहा है। घर में हलचल मच गई। छोटे-बड़े सब चढ़ावा देखने के लिए टूट पड़े। मांजी एक-एक चीज़ निकालकर देखने और दिखाने लगी। प्रशंसा भी होती रही और आलोचना भी। अचानक किसी ने कहा, "क्या चंदनहार नहीं है?"

मांजी ने रोनी सूरत बनाकर कहा, "नहीं, चंदनहार तो नहीं आया।"

दीनदयाल बोले, "और सब चीज़ें तो हैं। एक चंदनहार ही तो नहीं है।"

एक बूढ़ी सी औरत ने मुंह बनाकर कहा, "चंदनहार की बात ही और है।"

मांजी ने कहा, "बेचारी के भाग्य में चंदनहार लिखा ही नहीं है।"

सबके पीछे जालपा खड़ी थी। उसने जब सुना कि चंदनहार नहीं है तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि शरीर में एक बूंद भी रक्त नहीं है। वह अपने कमरे में आई और फूट -फूट कर रोने लगी। वह इच्छा जो सात वर्ष पहले उसके दिल में उगी थी, उस पर बिजली गिर पड़ी।

उसे इतना गुस्सा आ रहा था कि चढ़ावे को उठाकर फेंक दे। उसने मन में निश्चय किया, अब कोई आभूषण नहीं पहनूंगी।

बाबू दयानाथ जितने उत्साह से शादी करने गए थे, उतने ही दुखी हो कर लौटे। वहां से जो कुछ मिला, वह सब वहां खर्च हो गया। बार-बार अपनी ग़लती पर पछताते कि क्यों दिखावे में इतने रुपए खर्च कर दिए। सातवें दिन सर्राफ आया मगर रुपए कहां थे। छः महीने में रुपए किस्तों में चुकाने का वादा किया, फिर तीन महीने पर आए मगर सर्राफ न माना। आखिर दयानाथ ने तीसरे दिन शेष राशि के आभूषण वापस कर देने का वादा किया।

दयानाथ ने जागेशरी से कहा, "मैं सोचता हूं, उसे क्या जवाब दूंगा। मैं तो यह शादी करके बुरा फंसा। बहू कुछ आभूषण लौटा तो देगी?"

जागेशरी : "बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी उम्मीद रखते हो। उसकी ज़िद है कि जब तक चंदनहार न बन जाएगा कोई गहना न पहनूंगी। सारी चीजें छोटी बक्स में बंद कर रखी हैं। बस एक ही शीशे की चंदनहार गले में डाले हुए है। फिर कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आयी बहू से गहने मांग लिए जाएं।"

दयानाथ : "बुरा मालूम होता है तो लाओ, रुपए निकाल कर दे

दो। बुरा मुझे खुद मालूम होता है मगर गला कैसे छूटे?"

जागेशरी : "शादी विवाह में सभी कर्ज़ लेते हैं, अगर तुम चाहो तो छः महीने में सब रुपए चुका सकते हो।"

दयानाथ : "जो बात जीवनभर न की, वह अब अंतिम समय में नहीं कर सकता। बहू से घर का हाल साफ-साफ कह दो। बस तीन-चार चीज़ें लौटा दे।"

जागेशरी : "उससे तुम ही कहो, मुझसे न कहा जाएगा।"

उसी समस रमानाथ टेनिस रैकेट लिए बाहर से आया। रूमाल में बेले के गजरे थे। मां-बाप की आंखें बचाकर ऊपर जाना चाहता था कि जागेशरी ने टोका, "कहां जाते हो। तुमने नाच-तमाशे में बारह तेरह सौ रुपए उड़ा दिए। बताओ सर्राफ को क्या जवाब दिया जाए!"

रमानाथ : "मैंने रुपए उड़ा दिए? मैंने बाबूजी के आदेश के बिना एक पैसा भी खर्च नहीं किया।"

दयानाथ : "मैं तुम्हें दोष नहीं देता, किया तो मैंने ही। मेरी समझ में तो यही आता है कि शेष रुपयों के गहने वापस कर दिए जाएं।

रमानाथ : "मैं इस मामले में क्या कह सकता हूं। हां, इतना कह सकता हूं कि इस प्रस्ताव को जालपा खुशी से स्वीकार न कर सकेगी। रोना-धोना शुरू हो जाएगा और घर का पर्दा भी खुल जाएगा।"

रमानाथ ने जालपा से खूब बढ़-चढ़ कर बातें बनाई थीं। ज़मींदारी से कई हज़ार आते हैं। बैंक से ब्याज आता है।

तीनों में देर तक बहस होती रही। जागेशरी चाहती थी कि दयानाथ रिश्वत लेना शुरू कर दे। मगर रमानाथ जानता था कि पिता ने जो काम अपने जीवन में कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। वह निसंकोच जालपा से गहने मांग बैठे वह यह नहीं चाहता था। वह अब पछता रहा था कि क्यों जालपा से डींगें मारीं।

दयानाथ : "तुम दो-चार गहने उससे मांग क्यों नहीं लेते?"

रमानाथ : "मांग तो नहीं सकता, हां, कहिए तो उठा लांऊ?"

दयानाथ : "उठा लाओगे, उससे छिपा कर? मैंने कभी धोखा नहीं दिया और न कभी दूंगा। कहीं उसकी निगाह पड़ गई तो तुम्हें अपने मन में क्या समझेगी?"

उसके जवाब में रमानाथ ने उन्हें खरी-खरी सुनाई और वो चुपचाप सुनते रहे। रमानाथ ऊपर गया और गोपी से पूछा, "तुमने भांग की दुकान देखी है?"

गोपी ने जवाब दिया, "देखी क्यों नहीं।"

रमा ने उसे रुपया देकर कहा, "जाकर चार पैसे का भांग ले लो और आध सेर मिठाई भी लेते आना।"

रात के दस बज गए थे। जालपा खुली छत पर लेटी हुई थी। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि वह चांद की तरफ उड़ी जा रही है। उसे अपनी नाक में खुजली, आंखों में जलन और सर में चक्कर का एहसास हो रहा था। अचानक रमानाथ एक पोटली लिए मुसकराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया। बोला, "आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊंगा।" रमा ने बड़े जतन से उसे फूलों के गहने पहनाए। वह कमरे में जाकर दर्पण के सामने खड़ी हो गई। नशे के तरंग में उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह सचमुच फूलों की देवी है। रमा को उस समय अपने विश्वासघात पर शर्म आ रही थी।

जालपा ने कमरे से लौट कर उसकी ओर नशीली निगाहों से देखा तो उसने मुंह फेर लिया। दोनों बातें करते रहे फिर जालपा ने पूछा, "आज तुम बाज़ार गए थे या नहीं?"

रमा : "आज समय नहीं मिला।"

जालपा : "जाओ, मैं तुमसे न बोलूंगी। रोज बहाना करते हो। अच्छा, कल तो ला दोगे?"

रमानाथ का दिल भर आया। बेचारी चंदनहार के लिए इतनी उतावली हो रही है। इसे क्या पता कि आगे क्या होने वाला है।

आधी रात बीत चुकी तो वह धीरे से उठा लेकिन जालपा की आंख खुल गई। तीन घंटे और बीत गए। आखिर जब चार बजने की आवाज़ कान में आई तो वह उठा और कमरे में जा पहुंचा। अलमारी में रखे हुए गहनों के डिब्बे को उठाया और थर-थर कांपता हुआ नीचे बरामदे में दयानाथ के पास गया। रमा ने उन्हें धीरे से जगाया। उन्होंने हक्का-बक्का होकर पूछा, "कौन?"

रमानाथ ने होंठ पर उंगुली रख कर कहा, "मैं हूं। यह डिब्बा उठा लाया। रख लीजिए।"

दयानाथ समझ गए। रमानाथ ने जब कहा था तो उन्हें विश्वास नहीं था कि वह इरादे को पूरा कर दिखाएगा। पूछा, "इसे क्यों उठा लाए?"

"तो फिर रख आऊं?"

"अब क्या रख आओगे। कहीं देख लिया तो ग़ज़ब हो जाएगा।

रमा जैसे ही चारपाई पर बैठा, जालपा चौंक कर उससे लिपट गई। रमा ने पूछा, "तुम चौंक क्यों पड़ी," जालपा ने इधर-उधर देख कर कहा, "कुछ नहीं, एक सपना देख रही थी। जैसे कोई चोर मेरे गहनों का डिब्बा उठाए लिए जाता हो।" रमा का दिल इतने ज़ोर-ज़ोर से धक-धक् करने लगा जैसे उस पर हथौड़े पड़ रहे हों। वह ज़ोर से चिल्ला उठा, "चोर, चोर।"

नीचे बरामदे में दयानाथ भी चिल्ला उठे, "चोर, चोर।"

जालपा घबरा कर उठी, दौडी हुई कमरे में गई और अलमारी खोली, डिब्बा गायब था, बेहोश हो कर गिर पड़ी।

सुबह होते ही दयानाथ गहने ले कर सर्राफ के पास पहुंचे और

हिसाब होने लगा। सर्राफ मात्र पंद्रह सौ के गहने लेकर राज़ी न हुआ। बिके हुए गहनों को वह बट्टे पर ही ले सकता था। उसने कुछ ऐसी बातें कीं कि हां, हां करने के सिवा उन्हें कुछ और न सूझा। पंद्रह सौ में ढाई हज़ार के गहने भी चले गए ऊपर से पचास रुपए और शेष रह गए। इस पर बाप-बेटे में कई दिन तक खूब बहस हुई। दोनों एक दूसरे को दोष देते रहे। कई दिन आपस में बोल चाल बंद रही। इस चोरी को गुप्त रखा गया। पुलिस को ख़बर हो जाती तो भांडा फूट जाता। जालपा से यही कहा गया कि माल तो मिलेगा नहीं, मुफ्त की परेशानी होगी।

जालपा को गहनों की जितनी चाहत थी, उतनी शायद दुनिया की किसी और चीज़ की न थी। बचपन से गहने ही उसके खिलौने थे। जब थोड़ी और सयानी हुई, उन्हीं दिनों बिसाती से वह चंदनहार लिया जो अब तक उसके पास था। फिर बड़ी-बूढ़ियों में बैठकर गहनों के चर्चे सुनने लगी। औरतों की इसी छोटी सी दुनिया में इसके सिवा और कोई बात ही न थी कि किसने कौन-कौन से गहने बनवाए? कितना खर्च हुआ?

महीना भर से अधिक हो गया पर उसका घाव अभी ताज़ा था। नाममात्र को कुछ खा पी लेती थी, हंस बोल लेती थी। सारा घर, पड़ोसिनें समझा कर हार गईं। दीनदयाल आकर समझा गए लेकिन जालपा के दुख में कोई कमी नही आई। उसे घर में किसी पर भरोसा नहीं रहा, यहां तक कि रमा से भी खिंची हुई रहती है। वह समझती है कि घर में उसकी किसी को परवाह नहीं। जब इनके पास इतना धन है तो फिर उसके गहने बनवा क्यों नहीं देते? सबसे ज्यादा क्रोध तो रमानाथ पर था। अगर ये अपने मां-बाप पर जोर देकर कहते तो कोई इनकी बात न टाल सकता, मगर ये कुछ कहें भी। रमा उससे

बात करता तो वह दो-चार जली-कटी सुना देती। बेचारा अपना सा मुंह ले कर रह जाता। अब वह नौकरी की तलाश में भटकने लगा। वह चाहता था कि किसी तरह भी उसे दौलत मिल जाए। शतरंज के द्वारा कितने ही अच्छे-अच्छे आदमियों से उसकी दोस्ती हो गई थी लेकिन संकोच के मारे किसी से कुछ न कहता था। जानता था कि यह आवभगत उसी समय तक है जब तक वह किसी के सामने सहायता के लिए हाथ नहीं फैलाता।

एक दिन वह शाम तक नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिरता रहा और घर में आकर मुंह लटकाए हुए बैठ गया। जालपा ऊपर से आई और तेज़ी से कहा, "मुझे मेरे घर पहुंचा दो, इसी समय।" रमा उसकी ओर ऐसे ताकने लगा जैसे उसकी बात समझ में न आई हो।

जागेशरी : "कैसी बात करती हो बहू, भला इस तरह कहीं बहू-बेटियां विदा होती हैं?"

जालपा, "मैं उन बहू बेटियों में से नहीं हूं। जिस समय इच्छा होगी, जाऊंगी। जब यहां कोई मेरी बात नहीं पूछता तो मैं भी किसी को अपना नहीं समझती। अगर कोई मेरे साथ न जाएगा तो मैं अकेले ही चली जाऊंगी।" यह कह कर जालपा ऊपर चली गई। रमा भी पीछे-पीछे यह सोचता हुआ चला कि इसका गुस्सा कैसे शांत करूं? जालपा बिस्तर बांध रही थी कि रमा ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला, "तुम्हें मेरी कसम, जो इस समय जाने का नाम लो।"

जालपा : "मुझे तुम्हारी क़सम की परवाह नहीं।" उसने अपना हाथ छुड़ाया और फिर बिस्तर लपेटने लगी। रमा खिसियाना सा हो कर खड़ा हो गया। आखिर वह बिस्तर पर बैठ गई और बोली, "तुमने मुझे क़सम क्यों दिलाई?"

रमा : "इसके सिवा तुम्हें और कैसे रोकता?"

जालपा : "क्या तुम चाहते हो, मैं यहीं घुट-घुट कर मर जाऊं?"

रमा : "तुम ऐसे अपशकुन के शब्द क्यों मुंह से निकालती हो? मैं तो चलने के लिए तैयार हूं मगर कम से कम इन लोगों से पूछ तो लूं।"

जालपा : "वह मेरे कौन होते हैं कि मैं उनसे पूछूं। अगर कोई होते तो मेरी ओर यूं दिल छोटा न करते।"

रमा को बड़ी-बड़ी बातें करने का फिर अवसर मिला। "शायद तुम्हारा विचार ठीक है, नहीं तो ढ़ाई तीन हज़ार इनके लिए क्या बड़ी बात थी?"

जालपा : "मक्खीचूस हैं पहले दर्जे के।"

रमा : "मक्खीचूस न होते तो इतना धन कहां से आता?"

जालपा : "मुझे किसी की परवाह नहीं। हमारे घर किस बात की कमी है। जब तुम्हारी नौकरी लग जाए तो मुझे बुला लेना।"

रमा : "तलाश कर रहा हूं। कितने ही बड़े आदमियों से मुलाकात है, ज़रा अच्छी जगह चाहता हूं, मगर किसी से कहते हुए शर्म आती है।"

जालपा :"इसमें शर्म की क्या बात है? शर्म आती है तो पत्र लिख दो।"

रमा : "हां, यह ठीक है। कल ज़रूर लिखूंगा।" और रमा जालपा को रोकने में सफल हो गया।

रमा के जान-पहचान वालों में एक रमेश बाबू म्युनिसिपल बोर्ड में हेड क्लर्क थे। उम्र चालीस से ऊपर थी पर थे बड़े शौकीन। शतरंज खेलने बैठ जाते तो सवेरा कर देते। अकेले थे। जवानी में पत्नी मर गई थी, दूसरी शादी नहीं की। रमा से उनकी बड़ी औपचारिकता थी। क्योंकि रातभर उनसे शतरंज खेलने वाला रमा के अलावा कोई दूसरा नहीं था। रमा उनके पास पहुंचा। उसे देखते ही खुश हो गए, बोले,

"चोरी का कुछ पता चला? बहुत अच्छा हुआ, थाने में रपट नहीं लिखाई। नहीं तो सौ दो सौ की चपत और लगती। तुम्हारी पत्नी को तो बहुत दुख हुआ होगा।"

रमा : "कुछ मत पूछिए। मैं तो तंग आ गया। अब लगता है कि कहीं नौकरी करनी पड़ेगी। बताइए, है कहीं नौकरी-चाकरी का सहारा?"

रमेश ने आले पर से मोहरे और बिसात उतारते हुए कहा, "आओ, एक बाज़ी हो जाए। फिर इस समस्या पर विचार करेंगे।"

रमा : "मेरा तो इस समय खेलने का मन नहीं होता। सिर पर चिंता सवार है।"

रमेश : "एक बाज़ी तो खेल लो, फिर सोचेंगे क्या हो सकता है?"

बाज़ी शुरू हुई। रमा बाज़ी हार गया। रमेश बोले, "बोहनी तो अच्छी हुई। मेरे ही दफ्तर में एक जगह खाली है, मगर तनख्वाह बहुत कम है, मात्र तीस रुपए। कुछ दिन बाद पदोन्नति हो जाएगी। जगह आमदनी की है।"

रमा ने जताया, "मुझे आमदनी की परवाह नहीं। रिश्वत कोई अच्छी चीज़ नहीं।"

इसके बाद और बाजियां लगीं। रात के तीन बज गए। रमा सुबह को, रमेश बाबू के साथ दफ्तर गया। अर्जी दी और उसे नौकरी मिल गई। दफ्तर से घर पहुंचा तो चार बज गए थे।

जालपा ने पूछा, "रात कहां गायब थे?"

रमा : " नौकरी की चिंता में पड़ा हुआ था। इस समय दफ्तर से आ रहा हूं। मुझे एक जगह नौकरी मिल गई है।"

जालपा ने खुश होकर पूछा, "सच! कितने की जगह है?"

रमा ने बढ़ा कर बताया, "अभी तो चालीस रुपए मिलेंगे लेकिन

तरक्की जल्दी होगी। जगह आमदनी की है।"

जालपा ने पूछा, "तो तुम रिश्वत लोगे? ग़रीबों का गला काटोगे?"

रमा ने कहा, "नहीं, वह जगह ऐसी नहीं है कि ग़रीबों का गला काटना पड़े। बड़े-बड़े महाजन आते हैं और वह खुशी से दे देंगे।"

इतने में डाकिए ने पुकारा। रमा मुंशी दीनदयाल का भेजा हुआ पार्सल लाया। पार्सल खोला तो उसमें चंदनहार था। रमा ने खुश होकर कहा "यह तो अच्छा शगुन है।"

जालपा बोली, "अम्मा को यह क्या सूझी। यह तो उन्हीं का हार है। अभी डाक का समय हो तो इसे लौटा दो। मैं उनकी कृपा के बिना भी जीवित रह सकती हूं। मैं किसी का एहसान नहीं लेना चाहती। तुम हो तो मुझे बहुत गहने मिलेगें।"

रमा के समझाने पर भी वह न मानी। पार्सल बना कर लौटाने के लिए रमा को दे दिया।

मुंशी दयानाथ को जब रमा के नौकर होने की खबर मिली तो बहुत खुश हुए। बोले, "जगह अच्छी है। ईमानदारी से काम करोगे तो और अच्छी जगह पर पहुंच जाओगे। मेरी यही शिक्षा है कि पराए पैसे को अपवित्र समझना।" रमा के मन में तो आया कि साफ कह दे कि आप अपनी शिक्षा अपने ही लिए रखें। मगर वह इतना निर्लज्ज न था। दयानाथ ने फिर पूछा, "यह जगह तो तीस रुपए की है, तुम्हें बीस ही क्यों मिले?"

रमा ने बात बनाई, "नए आदमी को पूरी तन्खाह कैसे देते? शायद साल-छः महीने में पदोन्नति हो जाए।"

ससुराल से मिले हुए कुछ रुपए बच रहे थे, कुछ दोस्तों से कर्ज़ लिए। नया सूट बनवाया और नई चीजें खरीदीं। अच्छी आमदनी तभी हो सकती है जब अच्छा ठाठ हो। रमा कोट-पतलून पहन कर निकला

तो उसकी शान कुछ और हो गई। रमेश बाबू से अपने काम का चार्ज लेने आया तो देखा, बरामदे में फटी हुई मैली सी दरी पर एक मियां साहब संदूक पर रजिस्टर फैलाए बैठे हैं और व्यापारी लोग उन्हें चारों ओर से घेरे खड़े हैं। सामने ठेले और गाड़ियों के बाज़ार लगे हुए हैं। दरी पर बैठना रमा को अपनी शान के विपरीत प्रतीत हुआ। वह रमेश बाबू के पास जा कर बोला, "क्या आप मुझे भी इसी मैली दरी पर बिठाना चाहते हैं। एक मेज़ और कुर्सियां भिजवाइए। चार्ज देकर जब बूढ़े मियां साहब जाने लगे तो बोले, "हर एक बिल्टी पर एक आना बंधा है। इस एक आने में आधा चपरासियों का हिस्सा है आधा आप का।" रमा ने लापरवाही से कहा, "मुझे तो यह गंदा मालूम होता है! मैं सफाई के साथ काम करना चाहता हूं।"

रमा अपनी कुर्सी पर आ बैठा और चपरासी से बोला, "इन लोगों से कहो कि बरामदे के नीचे चले जाएं और एक-एक करके नंबर से आएं।" कई व्यापारियों ने कहा, "हां बाबू जी, यह प्रबंध हो जाए तो बहुत अच्छा है।"

दो-चार दिन के अनुभव से रमा को सारे दाव-पेंच मालूम हो गए। माल के वज़न और गिनती में बहुत धांधली होती थी। जब इस धांधली से व्यापारियों को सैकड़ों की बचत हो जाती है तो वह बिल्टी पर एक एक आना ही क्यों ले। रमा की आमदनी तेज़ी से बढ़ने लगी। चपरासी के साथ-साथ वह दफ्तर के बाबुओं की चाय, सिगरेट पर खर्च करता था। सबके सब रमा के बिन दामों के सेवक थे। मगर जालपा की अभी कोई इच्छा पूरी नहीं हुई थी। नागपंचमी और जन्माष्टमी के दिन वह अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकली। तीन महीने में उसने रमा से एक बार भी गहनों की चर्चा न की। जन्माष्टमी के दिन रमा आधी रात के बाद घर लौटा तो देखा कि जालपा कमरे के दरवाज़े पर खड़ी

है। रमा ने पूछा, "तुम गई क्यों नहीं? बड़ा अच्छा गाना हो रहा था।"

जालपा : "तुम तो सुन आए। वहां जाती तो किसके मुंह पर यह कालिख लगती?"

रमा : "कालिख लगने की कोई बात न थी, सभी जानते हैं कि चोरी हो गई है। इस ज़माने में दो चार हज़ार रुपए की चीज़ें बनवा लेना मुंह का कौर नहीं है।"

जालपा आंखों में आंसू भर कर बोली, "मैं तुमसे ज़ेवरों का तक़ाज़ा तो नहीं करती। भाग्य के लिखे को इंसान टाल सकता तो रोना ही किस बात का था।"

इन तीन महीनों में वह बहुत मुश्किल से कुछ रुपए ही बचा सका था। जालपा को तसल्ली देकर बोला, "ईश्वर ने चाहा तो एक आध चीज़ बन ही जाएगी।"

जालपा : "मैं उन औरतों में नहीं जो ज़ेवरों पर जान देती हैं। मगर इस तरह किसी के घर आते-जाते शर्म आती ही है।"

रमा : "अगर तुम्हारी राय हो तो किसी सर्राफ से वादे पर चीजें बनवा लूं?"

जालपा : "नहीं, मेरे लिए क़र्ज़ लेने की जरूरत नहीं। घर के आदमियों को मुसीबत में डालकर गहने पहननेवालियां दूसरी होंगी। तुमने तो पहले कहा था कि जगह बड़ी आमदनी की है। मुझे तो कोई खास बचत दिखाई नहीं देती।"

रमा : "बचत तो ज़रूर होती और अच्छी होती लेकिन दफ्तरवालों के मारे बचने भी पाए।"

जालपा : "तो अभी कौन सी जल्दी है?"

रमा : "खैर, अभी रहने देता हूं, लेकिन मैं सबसे पहले कगंन बनवाऊंगा।"

एक दिन दयानाथ ने उसे बुलाकर कहा, "मैंने तुम्हारे बारे में ऐसी बातें सुनी हैं जिससे मुझे दुख हुआ। तुम्हें समझा देना अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं कदापि यह नहीं चाहता कि मेरे घर में पाप की एक कौड़ी भी आए।"

रमा : "आपसे किसने यह बात कही? मैं उसकी मूंछे उखाड़ लूंगा।"

दया : "तुम दस्तुरी नहीं लेते?"

रमा : "दस्तुरी रिश्वत नहीं है। सभी लेते हैं और लोग बिन मांगे देते हैं।"

दया : "इससे तो यह सिद्ध नहीं होता कि रिश्वत अच्छी चीज़ है।"

रमा : "दस्तुरी बंद कर देना मेरे बस की बात नहीं है। मैं स्वयं न लूं मगर चपरासी या मुंशी का हाथ नहीं पकड़ सकता।" रमा के मन में आया कि साफ कह दे, आपने ज़िंदगी में क्या कर लिया जो मुझे शिक्षा दे रहे हैं। सदा पैसे-पैसे के लाले पड़े रहे। रमा घर में गया तो मां ने पूछा कि तुम्हारे बाबूजी किस बात पर बिगड़ रहे थे।

रमा : "मुझे शिक्षा दे रहे थे कि दस्तुरी मत लिया करो।"

जागेशरी : "तुमने कहा नहीं, आपने बड़ी ईमानदारी की तो कौन से झंडे गाड़ दिए।"

रमा : "कहना तो चाहता था मगर चिढ़ जाते।"

रमा दफ्तर जाने लगा तो जालपा ने उसे तीन लिफ़ाफ़े डाक में छोड़ने के लिए दिए। रास्ते में खोल कर उसने पत्र पढ़े। पत्र क्या थे, मुसीबत और दुख की कहानी थे जो उसने अपनी सहेलियों को सुनाए थे। उसने सोचा, जालपा अभी तक यही समझती है कि मैं उसे धोखा दे रहा हूं। उसे कैसे विश्वास दिलाऊं? अगर अपना बस होता तो उसी

समय गहनों के टोकरे भर-भर कर जालपा के सामने रख देता।

दफ्तर पहुंचा। वह सोच में डूबा बैठा रहा। उसे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था कि उसने शादी ही क्यों की। उसका मन काम में न लगा और समय से पहले उठकर घर चला आया।

जालपा : "मेरी चिठिठयां छोड़ तो नहीं दीं?"

रमा : "याद ही नहीं रहा, जेब में पड़ी रह गईं"

जालपा : "यह बहुत अच्छा हुआ! लाओ मुझे दे दो। अब नहीं भेजूंगी मैंने इनमें तुम्हारी शिकायत की थी!"

रमा, "जो बुरी नीयत वाला है, धोखेबाज़ है। उसकी अगर तुमने शिकायत की तो क्या ग़लत किया।"

जालपा ने घबराकर पूछा, "तुमने पत्र पढ़ लिए थे क्या? तब तो तुम मुझसे बहुत नाराज़ होगे? मुझसे बड़ी गलती हुई। जो सज़ा चाहे दो, पर हमसे नाराज़ मत हो।" उसका सिर झुक गया और आंसू आंचल पर गिरने लगे। जालपा जानती थी कि रमा को ज़ेवरों की चिंता मुझसे ज़रा भी कम नहीं है।

रमा उसके आंसू पोंछते हुए बोला, "मैं तुमसे नाखुश नहीं हूं। अगर तुमने मुझे मना न कर दिया होता तो अब तक मैंने किसी न किसी तरह दो एक चीज़ें बनवा दी होतीं।"

जालपा : "तो क्या क़र्ज़ लाओगे?"

रमा : "क्या हर्ज है। जब सूद नहीं देना है तो जैसे नगद वैसा उधार। कर्ज़ सिर पर सवार होगा तो उसकी चिंता हाथ को रोकेगी।"

सर्राफे में गंगू की दुकान पर ग्राहकों की भीड़ रहती थी। गंगू ने रमा को देखते ही कहा, "आइए बाबू साहब, ऊपर आइए। आप तो कभी आते ही नहीं।" इन सब बातों ने रमा की हिम्मत खोल दी। दुकान पर जा कर बोला, "यहां हम जैसे मज़दूरों का क्या काम।

महाराज, गिरह में कुछ हो तो।"

गंगू , "यह आप क्या कहते हैं बाबू साहब, आपकी दुकान है। जो चीज़ चाहिए ले जाइए। दाम आगे-पीछे मिलते रहेंगे।" गंगू ने हार निकाल-निकाल कर दिखाने शुरू किए। रमा ने सोच रखा था कि सौ रुपए से अधिक उधार न रखूंगा लेकिन चार सौ वाला हार आंखों में जंचता था और जेब में थे कुल तीन सौ रुपए। गंगू उसके दिल की बात ताड़कर बोला, "आपके योग्य तो बाबू जी यही चीज़ है।"

रमा : "पसंद तो मुझे भी यही है लेकिन मेरे पास कुल तीन सौ रुपए हैं।"

गंगू : "रुपए की बात ही मत कीजिए। आदेश हो तो दस हज़ार का माल साथ भेज दूं। एक शेषफूल बन कर आया है, देखकर खुश हो जाएंगे। आपको एक ढाई सौ में मिल जाएगा।"

रमा फूल देखकर बोला, "हां, है तो बहुत सुंदर। मगर ऐसा न हो कल ही पैसे का तक़ाज़ा करने लगो। मैं खुद ही जल्दी से जल्दी दे दूंगा।"

गंगू ने दोनों चीजें मख़मली डिब्बों में रख कर रमा को दे दीं। साढ़े छः सौ रुपए देने की तो उसे अधिक चिंता न थी, डर यही था कि बाबूजी सुनेंगे तो नाराज़ होंगे। वह घर पहुंचा तो जालपा उसकी राह देख रही थी। वह ऊपर चला गया। लेकिन जालपा न आई। रात को जब जालपा ऊपर पहुंची तो रमा उसे देखते ही बोला, "आज तो सर्राफे जाना बेकार गया। हार कहीं तैयार न था। बनाने को कह आया हूं।"

जालपा : "वह तो मैं पहले ही जानती थी। बनते-बनते पांच-छः महीने लग जाएंगे।"

जालपा मुंह फेर कर लेटने जा रही थी कि रमा ने ठहाका लगाया।

जालपा समझ गई। रमा ने शरारत की थी। "तुम भी बड़े नटखट हो। क्या लाए?"

जालपा दोनों ज़ेवरों को देखकर प्रसन्न हो गई। उसने हार गले में पहना, शेषफूल सजाया और पूछा, "जाकर मां को दिखा आऊं।"

रमा : "अम्मां को क्या दिखाने जाओगी। ऐसी कौन सी बड़ी चीजें है, मगर यह न कहना कि उधार लाए हैं।" अभी रात बीत चुकी थी। रमा खुशी की नींद सो रहा था। जालपा ने कमरे में आकर डिब्बा खोला और कांच का चंदनहार निकाला जिसे पहन कर एक दिन वह फूली न समाई थी। उसने वह नकली हार तोड़ डाला और उसके दानों को नीचे गली में फेंक दिया।

जिस दिन रमा ने गंगू की दुकान से गहने खरीदे, उसी दिन दूसरे सर्राफों को भी इसकी ख़बर मिली। उधर से निकलता तो दोनों ओर के दुकानदार उठ-उठ कर नमस्ते करते। यहां तक की एक दिन एक दलाल घर पर आ पहुंचा और रमा के नहीं-नहीं करने पर भी अपना जेवरी खोल कर उसके सामने रख दिया। रमा ने उससे पीछा छुड़ाने की बहुत कोशिश की लेकिन दलाल ने बड़ी चापलूसी से कहा, "बहूजी और माई जी को दिखा लीजिए। मेरा दिल गवाही देता है कि आपके हाथों बोहनी होगी।"

रमा ने कहा, "औरतों की पसंद न कहो, लेकिन भाई इस समय हाथ खाली है।"

दलाल बोला, "बाबूजी, बस ऐसी बात कह देते हैं।" उसने पिटारी से चीज़ें निकालीं। एक तो नए फैशन का जड़ाऊ कंगन और दूसरा कानों के रिंग। दोनों डिब्बे लिए हुए घर में आया। उसके हाथ में डिब्बे देखते ही दोनों औरतें टूट पड़ीं।

जागेशरी : "आज की चीज़ों के सामने तो पुरानी चीज़ें कुछ जंचती

ही नहीं हैं?"

रमा : "तो दोनों चीजें पसंद हैं?"

जालपा : "पसंद क्यों नहीं हैं। अम्मां जी, तुम ले लो।"

जागेशरी ने अपने दुख को छिपाने के लिए सिर झुका लिया। वह क्या सपने में भी ऐसे ज़ेवरों को पहनने की उम्मीद कर सकती थी? बोली, "मैं लेकर क्या करूंगी बेटी? कौन लाया है बेटा, क्या दाम मांगता है?"

रमा : "एक सर्राफ दिखाने लाया है। लेना तो था नहीं दाम पूछ कर क्या करता।"

जालपा : "लेना ही नहीं तो यहां क्यों लाए?" जालपा ने ये शब्द इस तरह कहे कि रमा खिसिया गया। बोला, "तो ले आऊं?"

जालपा : "अम्मा लेने को नहीं कहतीं तो लेकर क्या करोगे?"

वह डिब्बों को बंद करने ही वाली थी कि जागेशरी ने कंगन उठा कर पहन लिया। फिर मन में झिझक कर वह उसे उतारना ही चाहती थी कि रमा ने कहा, "अब तुमने पहन लिया है अम्मां तो पहने रहो।"

जागेशरी : "नहीं बेटा, मैंने तो ऐसे ही पहन लिया था। ले जाओ लौटा दो।"

जागेशरी ने बहू की ओर देखा। जालपा का चेहरा देख कर उसने तुरंत कंगन उतार डाला और उसकी तरफ बढ़ा कर बोली, 'मैं अपनी तरफ से तुम्हें देती हूं। अब तुम ज़रा पहनो, देखूं।"

जालपा को पूरा यकीन था कि अम्मा के पास रुपए हैं। वह समझी शायद आज देवी पसीज गयी हैं। एक क्षण पहले उसने समझा था कि रुपए रमा को देने पड़ेंगे। जब अम्मा दाम देने को तैयार थी तो मना करने की क्या जरूरत? ऊपरी दिल से बोली, "रुपए न हो तो रहने दीजिए।"

रमा ने कुछ चिढ़कर कहा, "तो तुम यह कंगन ले रही हो?"
जालपा : "अम्मा नहीं मानतीं तो हम क्या करें?"

रमा : "तो इन रिंगों को भी क्यों नहीं रख लेती?"

जालपा : "जाकर दाम तो पूछ आओ।"

रमा ने दलाल से दाम पूछे तो सन्नाटे में आ गया। कंगन सात सौ के थे और रिंग डेढ़ सौ के। दलाल से बोला, "बड़े महंगे हैं भाई। इन दामों की चीज़ें तो इस समय हम नहीं ले सकते।"

दलाल का नाम चरनदास था। बोला, "दाम में एक कौड़ी का फ़र्क़ पड़ जाए सरकार तो मुंह न दिखाऊं। आपके लिए इतने रुपए कौन बड़ी बात है?"

रमा को यकीन था कि जालपा ज़ेवरों के यह दाम सुन कर बिदक जाएगी।

रमा ने दाम का भय दिखा कर इन चीज़ों को वापस कर देना चाहा था मगर उसे सफलता न मिली। कीमत सुनकर जालपा ने खुद दलाल से बात की। दोनों चीज़ों के सात सौ मिलेंगे वर्ना अपनी चीज़ वापस ले जाओ। चरनदास ने बड़ी विनती की लेकिन जालपा उससे ज्यादा न बढ़ी। आखिर चरनदास राज़ी हो कर बोला, "है तो घाटा ही मगर आपकी बात टालते नहीं बनती। रुपए कब मिलेंगे?"

जालपा : "जल्दी ही मिल जाएंगे।" जालपा अंदर आकर बोली, "मुझे अफसोस हो रहा है कि कुछ और कम क्यों नहीं किया।" रमा कुछ न बोला। उसकी चालें कुछ उल्टी पड़ीं। जालपा दोनों चीज़ें लेकर ऊपर चली गई। जब वह ऊपर गया तो जालपा आईने के सामने खड़ी रिंग पहन रही थी।

बोली, "आज किसी अच्छे का मुंह देखकर उठी थी। दो चीजें मुफ्त हाथ आ गईं।"

रमा ने हैरानी से पूछा, "मुफ्त क्यों? रुपए न देने पड़ेंगे?"

जालपा, "रुपए तो मांजी देंगी। मुझे उपहार दिया है तो रुपए कौन देगा?"

रमा ने उसके भोलेपन पर मुस्करा कर कहा, "अम्मा को देना होता तो उसी समय दे देतीं, जब चोरी हुई थी।"

जालपा : "यह तो मुझे मालूम था? अब भी लौटा सकते हो।" यह कहकर उसने तुरंत कानों से रिंग निकाले, कंगन भी उतार डाले और दोनों चीज़ें डिब्बों में रख कर उसकी ओर बढ़ा दी।

रमा ने कहा, "रहने दो, ले लिया है तो अब क्या लौटाएं। अम्मा भी हसेंगी" जालपा बनकर बोली, "अपनी चादर देखकर पैर फैलाना चाहिए। एक नई मुसीबत मोल लेने की क्या ज़रूरत है?"

"ईश्वर मालिक है।" कहकर रमा नीचे चला गया।

जालपा को अब घर में बैठना अच्छा नहीं लगता था। अब तक वह मजबूर थी, कहीं आ जा नहीं सकती थी। अब उसके पास गहने हो गए थे फिर वह अकेली क्यों पड़ी रहती। मुहल्ले या बिरादरी में कहीं से बुलावा आता तो वह साथ ज़रूर जाती। कुछ दिनों के बाद वह अकेली ही आने-जाने लगी। उसका रूप, सौंदर्य, वस्त्र, आभूषण, बातचीत के अंदाज़ ने थोड़े ही दिनों में मुहल्ले की औरतों में सम्मान दे दिया। उसके बिना महफिल सूनी रहती। हर महफिल का खर्च उसकी जेब से ज़्यादा होता।

इस तरह से दो-तीन रुपए रोज उड़ जाते। फिर औरतों को सिनेमा देखने की धुन सवार हुई तो आए दिन सिनेमा की सैर होने लगी। रमा को अब तक सिनेमा का शौक़ न था। अब हाथ में पैसे आने लगे, फिर भला वह क्यों न जाता। सिनेमाहाल में ऐसी कितनी ही औरतें नज़र आतीं जो मुंह खोले हंसती बोलती रहती थी। उनकी आज़ादी जालपा पर भी जादू डालती जा रही थी। वह घर से निकलते ही मुंह खोल लेती थी मगर सिनेमा हाल में पर्देवालियों के साथ ही बैठती। उसका मन होता था कि रमा भी उसके साथ बैठे। आखिर वह उन

फैशनेबुल औरतों से किस बात में कम है। रमा पहले पर्दे का ऐसा हिमायती था कि मां को कभी गंगा स्नान के लिए ले जाता तो पंडितों तक से न बोलने देता। कभी मां की हंसी मर्दाने में सुनाई देती तो आकर बिगड़ता लेकिन जालपा पर कोई रोक-टोक न लगाई। एक दिन जालपा से बोला, "आज हम तुम सिनेमाघर में साथ बैठेंगें।"

जालपा : "लेकिन साथवालियां ज़िंदा न छोड़ेगीं।"

रमा : "इस तरह डरने से तो कुछ न होगा। यह मज़ाक है कि औरतें मुंह छिपाए चिक की आड़ में बैठी रहें।"

दो-चार दिन दोनों झेंपते रहे लेकिन फिर हिम्मत खुल गई। यहां तक कि शाम के समय दोनों पार्क में टहलने जाने लगे। दस-पांच दिन में इस नई सोसाइटी में अपना रंग जमा लिया। पहले ही दिन एक महिला ने जालपा को चाय पर आमंत्रित किया। जब दोनों वहां से लौटे तो रमा ने कहा, "तो कल चाय की पार्टी में जाना पड़ेगा।"

"तो क्या करती मना करते भी न बनता था।"

"तो तुम्हारे लिए एक अच्छी सी साड़ी ला दूं?"

"मेरे पास तो साड़ियां हैं। थोड़ी सी देर के लिए पचास-साठ रुपए खर्च करने से क्या फायदा?"

फिर भी दूसरे दिन रमा ने साड़ी और घड़ी ला कर ही छोड़ी। जालपा ने झुझंलाकर कहा, "मैंने तो तुम्हें मना किया था। सच बताओ कितने खर्च हुए?"

"एक सौ पैंतीस रुपए। पछत्तर की साड़ी, दस के जूते और पचास की घड़ी।"

"मगर यह सब रुपए कैसे दिए जाएंगे? कौड़ी तो बचती नहीं। इन चीज़ों को लौटा आओ।"

"सब दे दिया जाएगा। इन चीजों को रख लो। फिर तुमसे पूछे बिना न लाऊंगा।"

शाम को दोनों महिला के बंगले पर पहुंचे। फाटक पर नाम की प्लेट लगी हुई थी, "इन्दू भूषण, एडवोकेट।" पंडित जी नामी वकील थे। छः महीने पहले वह सोच भी न सकता था कि कभी वह उनका मेहमान होगा। वकील साहब और उनकी पत्नी के सिवा और कोई न था। रतन देखते ही बाहर निकली आई और अपने पति से उनका परिचय कराया। पंडित जी ने आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे दोनों से हाथ मिलाया और रमा से बोले, "क्षमा कीजिएगा बाबू साहब, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। यहां आप किसी कार्यालय में हैं?"

रमा, "जी हां, म्युनिसिपल आफिस में हूं। कानून की ओर जाने का विचार था लेकिन यहां नए वकीलों की दशा देखकर हिम्मत न पड़ी।"

रमा ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए थोड़ा सा झूठ बोलना जरूरी समझा। अगर वह साफ कह देता कि मैं पचीस रुपए का क्लर्क हूं तो शायद वकील साहब उससे बात करना पसंद न करते।

वकील साहब : "आपने बहुत अच्छा किया जो इधर नहीं आए। दो-चार साल के बाद आप किसी अच्छे पद पर पहुंच जाएंगे। यहां संभव है अब तक आपको कोई मुकदमा ही न मिलता।"

जालपा को अभी तक संदेह था कि रतन वकील साहब की लड़की है या पत्नी। वकील साहब की अवस्था साठ से ऊपर थी और बरसों के मरीज़ लगते थे। रतन सांवली और भरे हुए शरीर की औरत थी और मिलनसार।

चाय आई। मेवे, फल, मिठाई मेज़ों पर सजा दिया गया। वकील साहब ने लेटे-लेटे कहा, "आप शुरू करें।" बहुत आग्रह करने पर उन्होंने दो घूंट चाय पी। रतन जालपा को बगीचे में ले गई और रमा वकील साहब के पास बैठ गया तो वह बोले, "पता नहीं कि पेट में

क्या हो गया है। कुछ भी पचता ही नहीं।"

रमा ने कहा, "आपने हाज़मे की दवा नहीं की?"

वकील साहब बोले, "दवाओं पर मुझे तनिक भी विश्वास नहीं। कभी दो वैद्यों या डाक्टरों का निदान एक न हुआ। एक वैद्य रक्तचाप बताता है दूसरा पित्त का। एक डाक्टर फेफड़े की सूजन बताता है तो दूसरा आंत का कैंसर। बस अटकल से दवा की जाती है और निर्दयता से रोगियों की गर्दन पर छुरी फेरी जाती है। इन डाक्टरों ने तो अब तक मुझे नरक में पहुंचा दिया होता किंतु किसी तरह उनके पंजे से निकल कर भागा। योग के ज्ञान की बड़ी प्रशंसा सुनता हूं लेकिन ऐसा महात्मा नहीं मिलता जिससे कुछ सीख सकूं।

इधर रतन जालपा को बता रही थी, "वकील साहब को देख कर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा। मैं उनकी दूसरी पत्नी हूं। पहली पत्नी को मरे पैंतीस साल हो गए। उस समय उनकी उम्र 25 वर्ष थी लेकिन लड़के के कारण दूसरा विवाह न किया। मेरे माता-पिता न थे। मामा ने मुझे पाला। कह नहीं सकती कि उनसे कुछ ले लिया या इनकी शराफत पर रीझ गए। मैं तो कहती हूं कि ईश्वर की यही इच्छा थी।"

जालपा ने पूछा, "वकील साहब तुमसे नाराज़ रहते होंगे?"

रतन ने कहा, "बिल्कुल नहीं। मैं जितना चाहूं खर्च करूं, जैसे चाहूं रहूं, कभी नहीं बोलते। जो कुछ पाते हैं, लाकर मेरे हाथ पर रख देते हैं। मैं इनसे कहती हूं, अब तुम्हें वकालत करने की क्या आवश्यकता है, आराम क्यों नहीं करते। मगर उनसे बैठे रहा नहीं जाता। बस दो चपातियों से नाता है। मैंने बहुत ज़ोर दिया तो चार दाने अंगूर के खा लिए।"

रतन को जालपा का कंगन बहुत पसंद आया। रतन ने कहा, "मैं तो यहां किसी को जानती नहीं। तुम अपने बाबूजी से कहकर ऐसा ही

एक जोड़ा कंगन मेरे लिए बनवा दो।"

जालपा ने कंगन के दाम आठ सौ रुपए बताए। रमा भी वहां आ गया, जालपा ने रमा से कंगन बनवाने के लिए कहा। रमा ने दो सप्ताह में बनवाने का वादा कर लिया। रतन ने कहा कि अभी मेरे पास रुपए नहीं हैं बाद में दूंगी। जालपा ने रतन को अपने घर चाय का निमंत्रण दिया और दोनों गले मिल कर विदा हुईं। वो घर पहुंचे तो रमेश बाबू बैठे हुऐ थे। रमा ने उन्हें निमंत्रण के बारे में बताया। दावत के लिए दोनों ने एक लंबी सूची तैयार की। रमेश बाबू अच्छे-अच्छे घरों में आते जाते थे। दूसरे ही दिन से ऐसी सुंदर चीज़ें लाने लगे कि सारा घर जगमगा उठा। दावत से पहले एक दिन अचानक रतन आ गई। उसने रमा से कहा कि मैं बैठूंगी नहीं। आपसे कुछ कहना था। रमा उसके साथ बाहर मोटर तक आया। रतन ने कहा कि आपने सर्राफ से तो कह दिया होगा। मैंने रुपए का इंतज़ाम कर लिया है। आठ सौ रुपए ले लीजिए। रमा ने कहा कि शायद जालपा को याद न रहा होगा। वह कंगन छः सौ रुपए के हैं। आप चाहें तो आठ सौ के बनवा दूं। रतन ने कहा कि मुझे तो वही पसंद है। आप छः सौ के बनवाइए और वह छः सौ दे कर चली गई। वह अंदर आया तो रमेश बाबू और दयानाथ बातें कर रहे थे।

दयानाथ : "देखा, आंखें खुली हुई थीं। मेरे घर में भी यही लहर आ रही है।"

रमेश : "मैं तो इसमें कोई हरज नहीं समझता। आजकल ऐसी ही औरतों का काम है। यहां तो मर भी जाएं लेकिन औरत घर से पांव न निकालेगी।"

दयानाथ :"हमसे तो भैया की यह अंग्रेजीयत देखी नहीं जाती। क्या करें बेटे का प्रेम है, नहीं तो यही इच्छा होती है कि रमा से साफ

कह दूं, भैया अपना घर अलग लेकर रह। देखना, एक दिन यह औरत वकील साहब को दग़ा देगी।"

रमेश : "आप यह क्यों मान लेते हैं कि जो औरत बाहर आती जाती है वह ज़रूर खराब है।"

रमा ने अंदर जाकर जालपा को बताया कि रतन देवी कंगन के रुपए दे गईं। तुमने शायद आठ सौ बताए थे, उसने छः सौ ले लिए। यह सुनकर जालपा अपने झूठ बोलने पर पछताती रही कि रतन ने उसे धोखेबाज़ समझा होगा।

चाय पार्टी में रतन के साथ उनकी रिश्ते की बहन आई थी। वकील साहब नही आए थे। पार्टी की तैयारियों में रमा को इतनी फुर्सत नहीं मिली थी कि गंगू की दुकान तक जाता। उसने समझा था, गंगू को छः सौ रुपए पिछले हिसाब मे देकर नए कंगन बनवा लूंगा। दूसरे दिन रमा खुश होता हुआ गंगू की दुकान पर पहुंचा।" क्या रंग ढ़ंग हैं महाराज। कोई नई चीज़ बनवाई है?"

रमा के टाल-मटोल से गंगू इतना ऊब रहा था कि आज कुछ रुपए मिलने की उम्मीद भी उसे खुश न कर सकी। बोला, "बाबू साहब, चीज़ें कितनी बनीं और बिक चुकीं। आपने तो दुकान पर आना ही छोड़ दिया। आठ महीने हो गए आपके यहां से एक पैसा भी नहीं मिला।" रमा ने कहा, "भाई खाली हाथ दुकान पर आते शर्म आती थी। आज यह छः सौ रुपए ले लो एक जोड़ा कगंन तैयार कर दो। गंगू ने रुपए लिए और बोला कि बन जाएंगे तो बाकी रुपए कब मिलेंगे?"

रमा : "बहुत जल्द।"

गगूं : "हां बाबू जी, पिछला हिसाब साफ कर दीजिए।"

गंगू ने वादा तो कर लिया लेकिन एक बार धोखा खा चुका था। नतीजा यह हुआ कि रमा रोज़ तक़ाज़ा करता और गंगू रोज़ बहाना

करके टालता। एक माह बीत गया और कंगन न बना। रतन के तक़ाज़े के डर से रमा ने पार्क जाना छोड़ दिया मगर रतन ने घर तो देख ही लिया था, वह कई बार तक़ाज़ा करने आई। आखिर एक दिन उसने कहा, "जब वह बदमाश बनाकर नहीं देता तो किसी दूसरे कारीगर को क्यों नहीं देते?"

रमा :"उस दुष्ट ने ऐसा धोखा दिया कि कुछ न पूछिए। मैंने बड़ी गलती की जो उसे पेशगी रुपए दे दिए।"

रतन : "आप मुझे उसकी दुकान दिखा दीजिए। मैं उसके बाप से वसूल कर लूंगी। ऐसे बेइमान को पुलिस में देना चाहिए।" जालपा ने भी रतन का साथ दिया। रमा ने कहा, "आप दस दिन और सब्र करें। मैं आज ही उससे रुपए लेकर दूसरे सर्राफ को दे दूंगा।" रतन बड़ी मुश्किल से मानी मगर गंगू ने साफ जवाब दे दिया। जब तक आधे रुपए पेशगी न मिल जाएं, कंगन नहीं बन सकते। रमा ने उसकी बड़ी विनती की। मुझसे प्रोनोट लिखवा लो, स्टाम्प लिखवा लो। मगर गंगू ने साफ कह दिया कि आठ-आठ महीने का उधार नहीं होता। रुपए लाइए, कंगन ले जाइए।

रमा निराश हो कर घर लौट आया। मगर उस समय भी उसने सारा किस्सा जालपा से साफ-साफ कह दिया होता तो उसे चाहे कितना ही दुख होता अपने कंगन उसे दे देती। इसमें संदेह नहीं कि तनख़ाह के सिवा रमा को सौ रुपए ऊपर से मिल जाते थे और वह बचत करना जानता तो इन आठ महीनों में दोनों सर्राफों के आधे-आधे रुपए चुका देता। शाम को रमा ने फिर सर्राफे का चक्कर लगाया। बहुत चाहा कि किसी सर्राफ को झांसा दूं मगर कहीं दाल न गली। बाज़ार में तार की खबरें चला करती हैं।

रमा को रातभर नींद न आई। अगर आज कोई महाजन एक

हज़ार का स्टाम्प लिखवा कर उसे पांच सौ रुपए दे देता तो वह अपने आपको सौभाग्यशाली समझता। मगर ऐसे किसी महाजन से उसका लेन-देन न था। अपने मिलने वालों में उसने सभी से हवा बांध रखी थी, किस मुंह से अपनी दुखभरी कहानी कहता। रमा के मन में एक बार आया कि जालपा को अपनी परेशानियां बताए लेकिन झूठे स्वाभिमान ने उसकी जुबान बंद कर दी। जालपा जब भी उससे पूछती, सर्राफ को रुपए देने जाते हो कि नहीं तो वह हर बार कहता कि हां, कुछ हर महीने देता हूं। जालपा ने उसे परेशान देखकर पूछा था सर्राफों के रुपए तो अभी दिए नहीं गए होंगे। तो उसने कह दिया कि अब थोड़े ही बाक़ी हैं। अगर रमा हिम्मत करके इस समय भी जालपा को बता देता तो उसकी परेशानियां खत्म हो जाती। जालपा ने फिर भी पूछा कि तुमने कहीं रतन के रुपए तो सर्राफों को नहीं दे दिए। रमा ने इस सवाल पर मुंह बना कर कहा कि रतन के रुपए क्यों देता। आज चाहूं तो दो-चार हज़ार का माल ला सकता हूं। दस दिन में या तो चीज़ ला दूंगा या रुपया वापस कर दूंगा। जालपा तो थोड़ी देर में सो गई लेकिन रमा फिर इसी उधेड़बुन में पड़ा रहा।

सुबह वह दफ्तर गया और रजिस्टर खोल रुपए का जोड़ लगाने लगा। जोड़ किया तो ढाई हज़ार निकले। अचानक उसे सूझा कि क्यों न ढ़ाई हज़ार के जोड़ को ढ़ाई सौ कर दे। अगर चोरी पकड़ी भी गई तो कह दूंगा, जोड़ में गलती हुई। मगर इस विचार को उसने दिल में जमने न दिया। दिन बीतते गए। इतने दिन में उसने सौ रुपए जमा कर लिए थे। जालपा ने कई बार सैर को चलने के लिए कहा, लेकिन रमा ने उसे बातों में टाला। बस, कल का दिन और शेष था। कल रतन अगर कंगन मांगेगी तो वह उसे क्या जवाब देगा। क्या वह एक महीने का समय और न देगी। लेकिन रतन नवें दिन ही शाम को

पहुंची और यह कह कर चली गई कि मैं तो बाबूजी को कल की याद दिलाने आई हूं। रमा दिल में सहम रहा था। उसे बातों में लगा कर खुश करना चाहता था। बोला, जी हां खूब याद है। अभी सर्राफे की दुकान से चला आ रहा हूं। रोज सुबह शाम घंटा भर हाजिरी देता हूं। दो आदमी लगे हुए हैं मगर शायद एक महीने से कम में चीज़ तैयार न हो। हां, होगी लाजवाब! रतन ज़रा भी न पिघली। अच्छा, अभी महीनाभर और लगेगा। ऐसे क्या मोती पिरो रहा है कि तीन महीने में भी एक चीज़ न बनी। आप उससे कह दीजिए, मेरे रुपए वापस कर दे। मुझे कंगन पहनना ही नहीं। ऐसी धांधली कहीं नहीं देखी।

धांधली शब्द पर रमा तिलमिला उठा। ''धांधली नहीं, मेरी मूर्खता कहिए। मैंने पेशगी रुपए इसलिए दिए कि सर्राफ जल्द तैयार कर देगा। अब आप रुपए वापस मांग रही हैं। मुझे उम्मीद नहीं कि सर्राफ रुपए लौटा दे क्योंकि जो चीज़ आपके आदेश से बनाई है उसे वह कहां बेचता फिरेगा?''

रतन ने त्योरी चढ़ा कर कहा, "मैं कुछ नहीं जानती। मुझे कल या तो कंगन ला दीजिए या रुपए। अगर सर्राफ से आपका याराना है और उसकी दुकान दिखाने में आपको शर्म आती हो तो उसका नाम बता दीजिए, मैं पता लगा लूंगी। वाह, अच्छी दिल्लगी है। दुकान नीलाम करा दूंगी। जेल भिजवा दूंगी।"

रमा खिसिया कर ज़मीन की तरफ ताकने लगा। अच्छी बात है, आपको रुपए मिल जाएंगे कल। यह कहता हुआ वह कमरे में आया और रमेश बाबू व मानिक दास के नाम पत्र लिखे और दोनों भाइयों को भेजा। ज़िंदगी में पहला अवसर था कि उसने दोस्तों से रुपए कर्ज़ मांगे। दोनों बहुत देर बाद खाली हाथ लौटे।

शाम हो गई थी। सब एक-एक करके जा रहे थे मगर रमानाथ

अपनी कुर्सी पर बैठा हुआ रजिस्टर लिख रहा था। वह सोच रहा था, अब अपनी इज़्ज़त कैसे बचाए। आखिर उसने रतन को झांसा देने की ठानी। वह जानता था कि रतन की उत्सुकता मात्र इसलिए है कि वह समझती है कि मैंने उसके रुपए खर्च कर डाले। रमा उसे रुपए की थैली दिखा कर उसका संदेह मिटा देना चाहता था। वह खजांची के चले जाने की राह देख रहा था, इसलिए उसने देर की थी। आज की आमदनी के रुपए उसके पास थे, जो वह अपने घर ले जाना चाहता था। खजांची साहब ठीक पांच बजे उठे। रमा को जब मालूम हो गया कि वह दूर निकल गए तो उसने रजिस्टर बंद किया और चपरासी से बोला, "थैली उठाओ और जमा कराओ।"

चपरासी ने कहा, "खजांची साहब तो बहुत दूर चले गए।"

रमा ने आंखें फाड़ कर कहा, "मुझसे कहा क्यों नहीं? यह आमदनी कैसे जमा होगी? खैर, रुपए इसी दराज़ में रख दो, तुम्हारी निगरानी रहेगी।"

चपरासी ने कहा, "नहीं बाबू साहब, मैं यहां रुपए रखने नहीं दूंगा। कहीं उठ गए तो मैं बेगुनाह मारा जाऊंगा। सरकार, अपने साथ लेते जाएं।"

रमा तो चाहता यही था। एक एक्का मंगवाया, रुपयों की थैली रखी, और घर की तरफ यह सोचता हुआ चला कि अगर रतन झपकी में आ गई तो क्या पूछना। जालपा ने थैली देखकर पूछा, "क्या कंगन नहीं मिले।"

"अभी तैयार न थे... मैं रुपए उठा लाया।" रुपए अलमारी में रखकर घूमने चल दिया। उसके जाने के दस मिनट बाद रतन आ पहुंची और आते ही बोली, "कंगन तो आ गए होंगे।"

जालपा, "हां, आ गए हैं पहन लो। कई बार सर्राफ के पास गए,

ज़ालिम देता ही नहीं।"

रतन, "कैसा सर्राफ है कि इतने दिनों से हीले हवाले कर रहा है। मैं जानती कि रुपए ऐसे झमेले में पड़ जाएंगे तो देती ही क्यों। न रुपए मिलते हैं और न कंगन।"

"आपके रुपए रखे हुए हैं, ले जाइए।" जालपा ने अलमारी से थैली निकाली और रतन के सामने रख दी।

रतन के असंतोष का यही कारण था जो रमा ने समझा था। उसे संदेह हो रहा था कि इन लोगों ने मेरे रुपए खर्च कर डाले। रुपए सामने देखकर उसका संदेह दूर हो गया। बोली, "अगर दो चार दिन में देने का वादा करता है तो रहने दो।"

जालपा, "मुझे उम्मीद नहीं कि इतनी जल्दी दे।" रतन ने बहुत कोशिश की कि जालपा रुपए खोले लेकिन जालपा राज़ी न हुई। बोली, "पराई रकम घर में रखना खतरे की बात है। मेरी शादी के थोड़े ही दिन बाद मेरे सारे गहने चोरी हो गए थे। दस हज़ार की चपत पड़ गई।"

रतन उदास हो कर रुपए ले कर चली गई। जालपा खुश थी कि सर से बोझ टला। रमा घूम कर लौटा तो जालपा ने उसे बताया कि रतन आई थी। मैंने उसके रुपए दे दिए।

रमा घबरा कर बोला, "यह तुमसे किसने कहा था?"

जालपा, "उसी के रुपए तो तुमने ला कर रखे थे। तुम्हारे जाते ही वह आई और कंगन मांगने लगी। मैंने झल्लाकर रुपए दे दिए। जब मैंने दे दिए तो कहने लगी, क्यों लौटाती हो। मैंने कह दिया ऐसे संदेही स्वभाव वालों के रुपए मैं नहीं रखती।"

रमा बस इतना ही कह सका, "ईश्वर के लिए तुम मुझसे पूछे बिना ऐसे काम मत किया करो।" वह सोचने लगा कि जालपा पर

नाराज़ होना अन्याय था। जब उसने साफ कह दिया था कि यह रुपए रतन के हैं तो जालपा का कोई दोष नहीं है। रतन से किसी तरह रुपए वापस लेना चाहिए। क्यों न जाकर रतन से कहे कि मैंने सुना है कि आप रुपए लौटाने से नाराज़ हो गई हैं। असल में रुपए आपको वापस देने को न लाया था। इसलिए मांग लाया था कि सर्राफ जल्दी काम करे। यह सोच कर वह उसी समय रतन के बंगले पर पहुंचा। रतन के बंगले पर बड़ी बहार थी। उस समय वहां बच्चों का जमघट था। बच्चे झूला झूल रहे थे और रतन झुला रही थी। बरामदे में वकील साहब के पास चला गया। वकील साहब बोले, "आओ रमा बाबू, कहो तुम्हारे म्युनिसिपल बोर्ड की क्या खबरें हैं?"

रमा :"कोई नई बात नहीं है।"

वकील : "आपके बोर्ड में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा? जब तक औरतों की शिक्षा का रिवाज न होगा, देश उन्नति नहीं कर सकता।" वह नारी स्वतंत्रता, पर्दा और शिक्षा पर बोलते रहे, लेकिन रमा का ध्यान झूले की ओर था कि किसी तरह रतन से बात करने का अवसर मिले। वह वकील साहब से आज्ञा लेकर रतन के पास चला गया। लेकिन काफी देर तक रतन से बात न कर सका। वह झूले और बच्चों में मग्न थी, वह वापस चला आया। अचानक उसे याद आया, उस थैली में आठ सौ रुपए थे। शायद रतन ने रुपए गिने नहीं वर्ना जरूर उसे बताती। कहीं ऐसा न हो कि थैली किसी को दे दे या और रुपयों के साथ मिला दे। मैं तो कहीं का न रहूंगा। इसी समय बाकी रुपए मांग लाऊं लेकिन अब तो बहुत देर हो गई। सवेरे फिर आना पड़ेगा। उसने फिर सोचा अगर यह दो सौ रुपए मिल गए और सौ रुपए उसके पास हैं, फिर भी पांच सौ रुपयों की कमी रहेगी। इसका क्या इंतज़ाम होगा? रमा ने सोचा, एक बार फिर

गंगू के पास चलूं। उसके हाथ पांव पड़ूं। वह सर्राफा जा पहुंचा, मगर गंगू की दुकान बंद थी। वह पीछे मुड़ा ही था कि चरनदास आता हुआ नज़र आया। देखते ही बोला, "बाबूजी, आपने तो इधर का रास्ता ही छोड़ दिया। कहिए, रुपए कब मिलेंगे।" रमा ने कहा, "अब जल्दी ही दे दूंगा। गंगू के रुपए दे चुका हूं।" चरनदास बोला, "अजी दुकान पर आकर हिसाब कर जाइए, पूरा नहीं तो आधा-तिहाई कुछ तो दीजिए।"

रमा, "भाई, कल मैं रुपए लेकर तो न आ सकूंगा। क्या इस समय अपने सेठ जी से चार पांच सौ का बंदोबस्त करा सकते हो। तुम्हारी मुट्ठी भी गर्म कर दूंगा।"

चरनदास, "कहां की बात लिए फिरते हो बाबू जी? उन्होंने यही बड़ा व्यवहार किया कि शिकायत नहीं की। क्या बड़े मुंशी जी से कहना पड़ेगा?"

रमा, "तुम्हारा देनदार मैं हूं, बड़े मुंशी जी नहीं हैं। मैं मर नहीं गया हूं। घर छोड़कर भागा नहीं जाता।" रमा ने यह कह कर साइकिल बढ़ा दी। कहीं यह शैतान सचमुच बाबूजी के पास तक़ाज़ा न भेज दे। आग ही हो जाएंगे। जालपा भी समझेगी, कैसा गपाड़िया आदमी है। जालपा से अपनी असली हालत छुपा कर उसने कितनी बड़ी गलती की। वह समझदार औरत है। इस बीच में उसकी आमदनी एक हज़ार से कम न हुई होगी। अगर उसने बचत की होती तो इन दोनों महाजनों के आधे-आधे रुपए जरूर चुकता हो जाते। वह घर पहुंचा तो जालपा ने पूछा, "कहां चले गए थे?"

रमा : "तुम्हारे कारण रतन के बंगले तक जाना पड़ा। उसमें दो सौ रुपए मेरे भी थे।"

जालपा :"तो मुझे क्या मालूम था लेकिन उसके पास से रुपए जा नहीं सकते।"

रमा : "माना, मगर सरकारी रकम तो कल जमा करनी पड़ेगी।"

जालपा : "मुझसे दो सौ रुपए ले लेना, मेरे पास हैं।"

रमा : "तुम्हारे पास इतने रुपए कहां से आए?"

जालपाः "तुम्हें इससे क्या मतलब?"

रमा को कुछ संतोष हुआ। दो सौ रुपए यह दे दे, दो सौ रुपए रतन से मिल जाएंगे, सौ रुपए उसके पास हैं, तो कुल तीन सौ रुपए की कमी रह जाएगी। ऐसा कोई दिखाई नहीं देता था जिससे इतने रुपए मिलने की आशा की जा सके। सुबह रमा ने रतन के पास अपना आदमी भेजा। रतन ने दो सौ रुपए दे दिए। जालपा को जब मालूम हुआ तो उसने रमा से पूछा, "तुमने अपने रुपए रतन से मंगवा लिए, अब तो मुझसे न लोगे? मैंने कह दिया था कि रुपए दे दूंगी फिर आदमी क्यों दौड़ाया?"

रमा : "मत दो। मैंने रतन से रुपए नहीं मंगवाए थे। सिर्फ इतना लिख दिया था कि थैली में दो सौ रुपए ज्यादा हैं।"

अचानक किसी ने नीचे से आवाज दी, "बाबू जी, सेठ ने रुपए लेने भेजा है।"

मुंशी दयानाथ ने सेठ के प्यादे को देखकर पूछा,"कौन सेठ, कैसे रुपए?"

प्यादा, "छोटे बाबू ने कुछ माल लिया था। साल भर हो गया, अभी तक एक पैसा न दिया।"

दयानाथ ने रमा को पुकारा, "देखो, किस सेठ का आदमी आया है। हिसाब साफ क्यों नहीं कर देते? कितना बाकी है?"

प्यादा :"पूरे सात सौ बाबू जी।"

रमा : "तुम चलो दुकान पर। मैं खुद आता हूं।"

प्यादा : "हम बिना रुपए लिए न जाएंगे साहब। आप यूं ही टाल दिया करते हैं।"

मुंशी दयानाथ ने रमा को डांटा, "क्या बेशर्मी की बातें करते हो जी। जब गिरह में रुपए नहीं तो चीज़ लाए ही क्यों? शिकायत कर देगा तो क्या इज्ज़त रह जाएगी तुम्हारी और तुम्हें यह सूझी क्या कि इतना बड़ा बोझ सर पर लाद लिया।"

रमा : "आप झूठे ही इतना बिगड़ रहे हैं। आप से रुपए मांगू तो कहिएगा।"

प्यादे ने बाप-बेटे में तक़रार होते देखा तो चुपके से राह ली। मुंशी जी भुनभुनाते हुए अंदर चले गए। रमा ऊपर गया। जिस बेइज्ज़ती से बचने के लिए वह भागता फिरता था, वह आज हो ही गई। इस अपमान के सामने सरकारी रुपयों की चिंता भी गायब हो गई।

जालपा ने पूछा, "तुमने कहा था, उसके अब थोड़े ही रुपए बाकी हैं।"

रमा : "बदमाश झूठ बोल रहा था।"

जालपा : "दिए होते तो क्यों तक़ाज़ा करता। जब तुम्हारी आमदनी इतनी कम थी तो गहने लिए क्यों? मैंने तो कभी ज़िद न की थी। और मान लो ज़िद भी करती तो तुम्हें समझबूझ कर काम करना था। आदमी सारी दुनिया से पर्दा रखता है मगर अपनी पत्नी से तो पर्दा नहीं रखता। अगर मैं जानती कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि सारे मुहल्ले की औरतों को सैर कराने ले जाती। मैं कोई बाज़ारी औरत तो थी नहीं कि तुम्हें नोच खसोट कर अपना घर भर लेती। मैं तो भले-बुरे दोनों ही की साथिन हूं।"

रमा चुप रहा। कपड़े पहने और दफ्तर चला। दरवाज़े तक पहुंचा तो जालपा नीचे आई और बोली, "मेरे पास जो दो सौ रुपए हैं वह क्यों नहीं सर्राफ को दे देते।"

रमा : "अच्छी बात है, लाओ दे दो।" सड़क पर आकर रमा ने एक तांगा लिया और रतन के बंगले पर जा पहुंचा। शायद रतन से मुलाकात हो जाए। वह चाहे तो तीन सौ रुपयों का बड़ी आसानी से इंतज़ाम कर सकती थी। वह सामने ही बरामदे में बैठी थी। रमा ने उसे देख कर हाथ उठाया, उसने भी हाथ उठाया। तांगा सामने से निकल गया। वह अंदर न जा सका। तांगा और आगे पहुंचा तो रमा ने उसे चुंगी के दफ्तर चलने को कहा। उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह सीधा रमेश बाबू के पास पहुंचा।

रमेश : "तुम अब तक कहां थे जी। खजांची साहब तुम्हें तलाश करते फिरते हैं। चपरासी मिला था।"

रमा : "मैं घर पर न था। जरा वकील साहब के पास चला गया था। एक बड़ी मुसीबत में फंस गया हूं।"

रमेश : "कैसी मुसीबत। घर में तो खैरियत है?"

रमा : "कल शाम को यहां बहुत काम था। मैं उसमें ऐसा फंसा कि समय का ध्यान ही न रहा और खजांची साहब चले गए। मेरे पास आमदनी के आठ सौ रुपए थे। सोचने लगा, उसे कहां रखूं? यही फैसला किया कि साथ लेता जाऊं। पांच सौ रुपए नगद थे। वह तो मैंने थैली में रखे। तीन सौ रुपए के नोट जेब में रख लिए। चौक में दो एक चीजें लेनी थी। उधर से होता हुआ घर पहुंचा तो नोट गायब थे।"

रमेश : "तीन सौ रुपए के नोट गायब थे। तुम को मार कर थैली नहीं छीन ली?"

रमा : "क्या बताऊं, सुबह से इसी चिंता में दौड़ रहा हूं, लेकिन कोई बंदोबस्त न हो सका। आज शाम तक का समय दीजिए, कुछ न कुछ करूंगा ही।"

रमेश : "मेरी समझ में नहीं आता, तुमसे इतनी लापरवाही क्यों हुई। मेरी जेब से तो आज तक एक पैसा भी न गिरा। मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता। सचमुच बता दो, कहीं अनाप-शनाप तो नहीं खर्च कर डाले? उस दिन तुमने मुझसे रुपए क्यों मंगाए थे?"

रमा का चेहरा पीला पड़ गया। बोला, "क्या सरकारी रुपए खर्च कर डालूंगा। उस दिन आपसे रुपए इसलिए मांगे थे कि बाबू जी को एक ज़रूरत पड़ गई थी। नोटों के गायब होने का तो मुझे खुद आश्चर्य है।"

रमेश : "तुम्हें यकीन है, शाम तक रुपए मिल जाएंगे?"

रमा : "जी हां, उम्मीद तो है।"

रमेश : "फिर यह पांच सौ रुपए जमा कर दो। मगर देखो भाई, मैं साफ साफ कह देता हूं। अगर कल दस बजे तक रुपया न लाए तो मुझे दोष न देना। नियम तो यही कहता है कि मैं इसी समय तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूं। मैं सरकारी कामों में किसी प्रकार की सुनवाई नहीं चाहता। तुम्हारी जगह अगर मेरा लड़का या भाई होता तो मैं उसके साथ भी यही व्यवहार करता बल्कि शायद इससे भी कठोर? मेरे पास रुपए होते तो तुम्हें दे देता। कल रुपए न आए तो बुरा होगा। मेरी दोस्ती भी तुम्हें पुलिस के पंजे से न बचा सकेगी। मेरी दोस्ती ने तो आज अपना कर्तव्य निभा दिया वर्ना इस समय तुम्हारे हाथों में हथकड़ियां होतीं।"

रमा शाम को दफ्तर से चलने लगा तो रमेश बाबू दौड़े हुए आए और कल रुपए लाने के लिए चेताया। वह झल्ला उठा। अगर रमा इस समय भी जाकर जालपा से सारी घटना बता देता तो वह उसके साथ जरूर हमदर्दी करती। वह अपने सारे गहने उसे दे देती और वह उन गहनों को गिरवी रख कर सरकारी रुपए का भुगतान कर देता।

दिल में यही फैसला करके रमा घर की तरफ चला। घर पहुंच कर उसने सोचा, जब यही करना है तो जल्दी क्या है, जब चाहूंगा, मांग लूंगा। खाना खा कर लेटा तो उसके मन में आया क्यों न चुपके से कोई चीज उठा ले जाऊं। परिवार की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए उसने एक बार यही चाल चली थी। अब फिर उसी तरह वह अपनी जान की रक्षा नहीं कर सकता, मगर भ्रम हुआ, कहीं जालपा की आंख न खुल जाए। जो कुछ भी हो, एक बार कोशिश करना जरूरी है। वह चारपाई से उतर कर खड़ा हुआ। अब उसे जालपा की जेब से चाबियों का गुच्छा निकालना था लेकिन जब वह चाभी निकालने के लिए झुका तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि जालपा मुस्करा रही है। उसने तुरंत हाथ खींच लिया। वह फिर चारपाई पर लेट गया। उसी समय जालपा जाग गई और बातें करते-करते दोनों सो गए। रमा इस विचार से सोया था कि बहुत सवेरे उठ जाऊंगा लेकिन नींद खुली तो कमरे में रोशनी फैल चुकी थी। वह घबरा कर उठा और बिना हाथ मुंह धोए कपड़े पहन कर रमेश बाबू के यहां जाने को तैयार हो गया। जालपा उस समय खाना बनाने की तैयारियां कर रही थी। रमा को इस तरह जाते देख कर उसके चेहरे की तरफ देखा। रमा के चेहरे से बेचैनी, परेशानी और डर ज़ाहिर हो रहा था। उनकी यह क्या दशा है। उससे कुछ कहते क्यों नहीं। वह और कुछ न कर सके, हमदर्दी तो कर ही सकती है। उसके मन में आया, रमा से पूछे कि क्या बात है? उठकर दरवाज़े तक आई भी, लेकिन रमा सड़क पर दूर निकल गया था। उसने देखा वह बड़ी तेजी से सिर झुका कर चला जा रहा है।

रमा रमेश के घर पहुंचा तो आठ बज गए थे। उसे देख कर बोले, "क्या अभी तक हाथ मुंह नहीं छूटा? और कुछ न करो, शरीर की सफाई का तो ध्यान रखो। क्या हुआ रुपए का कुछ प्रबंध हुआ?"

रमा : "इसी चिंता में तो आपके पास आया हूं।"

रमेश, "तुम भी विचित्र आदमी हो। आखिर मुंशी जी से कहते तुम्हें शर्म क्यों आती है? यही तो होगा कुछ डांट-डपट करेंगे लेकिन इस मुसीबत से तो छुटकारा मिल जाएगा।"

रमा : "उनसे कहना होता तो कभी का कह चुका होता। क्या आप कोई प्रबंध नहीं कर सकते?"

रमेश : "कर क्यों नहीं सकता, मगर करना नहीं चाहता। ऐसे आदमी के साथ मुझे कोई हमदर्दी नहीं हो सकती। जो बात तुम मुझसे कह सकते हो, क्या उनसे नहीं कह सकते। अगर वह रुपए न दें तब मेरे पास आना।"

रमा ने कोई जवाब न दिया, वहां से उठ कर चला। रमा की हालत यह थी कि दस कदम तेज़ी से आगे चलता, फिर कुछ सोच कर रुक जाता और दस-पांच कदम पीछे लौट जाता। कभी इस गली में घुस जाता और कभी उस गली में। अचानक उसे एक उपाय सूझा। क्यों न जालपा को पत्र लिख कर सारी बात बता दे। उसने सोचा कि पत्र लिख कर जालपा को दे दूंगा और बाहर के कमरे में आ बैठूंगा। वह भागा हुआ घर आया और पत्र लिखा-

"प्रिये

क्या कहूं, किस मुसीबत में फंसा हूं। अगर एक घंटे के अंदर तीन सौ रुपए का प्रबंध न हो सका तो हाथों में हथकड़ियां पड़ जाएंगी। मैंने बहुत हाथ पैर मारे कि किसी से कर्ज़ ले लूंगा मगर न हो सका। अगर तुम अपने दो-एक ज़ेवर दे दो तो मैं गिरवी रख कर काम निकाल लूं। जैसे ही रुपए हाथ आ जाएंगे छुड़ा दूगां। अगर मजबूरी न होती तो तुम्हें कष्ट न देता। ईश्वर के लिए नाराज़ न होना। मैंने तुमसे अब तक रहस्य को छुपाया, इसका मुझे दुख है।"

पत्र जेब में डालकर अंदर गया। जालपा किसी सहेली के घर जाने को तैयार थी।

बोली, "आज सवेरे कहां चले गए थे। हाथ मुंह तक न धोया। तुम नहीं होते तो घर सूना लगता है।"

रमा : "तुम तो कहीं जाने को तैयार बैठी हो?"

जालपा : "सेठानी जी ने बुला भेजा है। दोपहर तक चली आऊंगी।"

रमा चुप रहा। उसे अपनी तरफ टकटकी लगा के देख कर जालपा ने कहा, "देखो मुझे नजर न लगा देना।"

सब कुछ भूल कर उसने मदहोश होकर कहा, "नज़र तो न लगाऊंगा, हां सीने से लगा लूंगा।" यह कह कर गले लगा लिया और भींच-भींच कर प्यार करने लगा जैसे मुहब्बत के ख़जाने को आज ही लुटा देगा।"

जालपा : "मुझे कुछ तो रुपए दे दो, शायद वहां ज़रुरत पड़े।"

रमा : "रुपए तो इस समय नहीं हैं।"

जालपा : "नहीं हैं। मुझसे बहाना कर रहे हो।" यह कह कर उसने जेब में हाथ डाल दिया और कुछ पैसों के साथ वह पत्र भी निकाल लिया।

रमा ने हाथ बढ़ा कर पत्र जालपा के हाथ से छीनने की कोशिश करके कहा, "यह काग़ज़ मुझे दे दो। सरकारी काग़ज़ है।"

जालपा : "किसका पत्र है बताओ।" फिर उसने तह किए हुए काग़ज़ को खोल कर कहा, "यह सरकारी काग़ज़ है? झूठे कहीं के, यह तुम्हारा ही लिखा है..."

रमा ने फिर काग़ज़ छीन लेना चाहा, मगर जालपा ने हाथ पीछे करके कहा "मैं बिना पढ़े नहीं दूंगी। ज्यादा ज़िद करोगे तो फाड़ डालूंगी।"

रमा : "अच्छा फाड़ डालो।"

जालपा : "तब तो मैं ज़रूर पढ़ूंगी।" उसने दो कदम पीछे हट कर काग़ज खोला और पढ़ने लगी।

रमा ने दोबारा छीनने की कोशिश नहीं की। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे आसमान फट पड़ा है। वह धम-धम् करता हुआ ऊपर से उतरा और बाहर चला गया। कहां अपना मुंह छिपाए कि कोई उसे देख न सके।

जिन बातों को जालपा से छुपाने की इतने दिन से कोशिश की, हाय, सारा पर्दा खुल गया। वह अब यहां रह कर अपनी बेइज़्ज़ती अपनी आंखों से नहीं देख सकता। जालपा की सिसकियां, मुंशी जी की झिड़कियां, पड़ोसिनों की चुटकियां सुनने से मर जाना कहीं आसान है। हाय, सिर्फ तीन सौ रुपयों के लिए उसका सत्यानाश हुआ जा रहा है।

जालपा उसे कितना झूठा और धोखेबाज समझ रही होगी। क्या वह उसे मुंह दिखा सकता है। क्या दुनिया में कोई ऐसी जगह नहीं है जहां वह इस तरह छुप जाए कि पुलिस उसका पता न पा सके। गंगा की गोद के सिवा और कहां है ऐसी जगह। अगर ज़िंदा रहा तो महीना-दो-महीना में ज़रूर पकड़ लिया जाएगा। वह हथकड़ियां और बेड़िया पहने हुए अदालत में खड़ा होगा। जालपा, रतन, उसके मां, बाप, रिश्तेदार, दोस्त परिचित मुहल्ले के लोग उसका तमाशा देख रहे होंगे। नहीं, वह अपनी मिट्टी यूं खराब नहीं करेगा। इससे अच्छा है कि वह डूब मरे।

मगर फिर विचार आया कि जालपा का क्या होगा? मां बाप तो रो-धो कर सब्र कर लेंगे। क्या शहर से दूर किसी छोटे से गांव में छुप कर वह नहीं रह सकता। न जाने इस समय जालपा की क्या दशा होगी। शायद उस पत्र का अर्थ समझ गई हो। शायद उसने जागेशरी

को वह पत्र दिखाया हो और दोनों घबराई हुई उसे तलाश कर रही हों। शायद मुंशी जी को बुलाने के लिए लड़कियों को भेजा गया हो। चारों ओर उसकी तलाश हो रही होगी। उसे संदेह हुआ कि कहीं कोई इधर भी न आता हो। आगे पीछे चौकन्नी नज़रों से ताकता हुआ वह उस जलती धूप में चला जा रहा था। अचानक रेल की सीटी सुन वह चौंक पड़ा। रेलगाड़ी सामने खड़ी थी। गाड़ी ने जैसे ज़बरदस्ती उसे अपनी तरफ खींच लिया। जैसे उसमें बैठते ही उसकी सारी परेशानियां ख़त्म हो जाएंगी। मगर जेब में रुपए न थे। सिर्फ उंगुली में एक अगूंठी थी। उसने कुली को बुलाकर कहा, "भाई यह अंगूठी बेच कर ला सकते हो? एक रुपया तुम्हें दूंगा। घर से रुपए ले कर चला था, मालूम होता है कहीं गिर गए। रुपए लेने घर जाऊंगा तो गाड़ी न मिलेगी और बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा।"

कुली ने उसे सिर से पांव तक देखा। समझ गया कोई भागा हुआ अपराधी है। अंगूठी ली और स्टेशन के अंदर चला गया। रमा टिकट घर के सामने टहलने लगा। दस मिनट गुजर गए। कुली का कहीं पता नहीं! कहां चला गया मूर्ख! स्टेशन के अंदर जाकर उसे तलाश करने लगा। घबराहट में कुली का नंबर तक न देखा था। इधर गाड़ी छूटी जा रही थी। बिना टिकट लिए गाड़ी में जा बैठा। सोचा, साफ कह दूंगा कि मेरे पास टिकट नहीं है। अगर उतरना भी पड़ा तो यहां से दस पांच कोस दूर तो चला ही जाऊंगा।

गाड़ी चल दी। उस समय रमा को अपनी हालत पर रोना आ गया। दुख उसे इस बात का था कि न जाने कभी लौटना भी होगा कि नहीं। उसने शुरू ही से सच्चाई से जालपा को अपनी हालत बता दी होती तो आज अपने मुंह पर कालिख मल कर न भागना पड़ता। मगर कहता कैसे? वह अपने को बदनसीब न समझने लगती? कुछ न सही,

कुछ दिन तो उसने जालपा को सुखी रखा।

अभी गाड़ी को चले दस मिनट भी न हुए थे कि टिकट चेकर आ गया। रमा के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी। उसका दिल धक-धक करने लगा। उसके पास आ कर टिकट चेकर ने पूछा, "आप का टिकट?"

रमा ने ज़रा संभल कर कहा, "मेरा टिकट तो कुली के पास रह गया। उसे टिकट लाने के लिए रुपए दिए थे, न जाने किधर गया।"

टिकट चेकर : "मैं कुछ नहीं जानता। आपको अगले स्टेशन पर उतरना होगा। आप कहां जा रहे हैं?"

रमा : "यात्रा तो बड़ी दूर की है। कलकत्ता तक जाना है। मेरे पास पचास का नोट था। खिड़की पर बड़ी भीड़ थी। मैंने कुली को टिकट लाने के लिए नोट दिया, लेकिन वह लौटा ही नहीं। शायद आप उसे पहचानते हो। वह कुलियों का जमादार है। लंबा-लंबा आदमी, चेहरे पर चेचक के निशान।"

टिकट चेकर : "आप इस संबंध में लिखा पढ़ी कर सकते हैं मगर बिना टिकट नहीं जा सकते।"

रमा : "भाई साहब आपसे क्या छिपाना, मेरे पास और रुपए नहीं हैं।"

टिकट चेकर : "मुझे दुख है। मैं कानून से मजबूर हूं।"

डिब्बे के सारे आदमी आपस में कानाफूसी करने लगे। अधिकतर मज़दूर थे जो मज़दूरी की तलाश में पूरब जा रहे थे। रमा चुपचाप सिर झुका के खड़ा था। न जाने आगे क्या-क्या मुसीबतें उठानी होगी। उसका मन हुआ कि गाड़ी से कूद पड़े। उस झंझट से तो मर जाना ही अच्छा है। उसकी आंखें भर आईं। उसने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया और रोने लगा। एक बूढ़े आदमी ने जो उसके पास बैठा

था, पूछा, "कलकत्ता में कहां जाओगे बाबूजी?"

रमा झल्ला कर बोला, "तुम से मतलब, मैं कहीं भी जाऊं?"

बूढ़ा बोला, "मैं भी वहीं चलूंगा। हमारा तुम्हारा साथ हो जाएगा। किराए के रुपए मुझसे ले लो, फिर वहां दे देना।"

अब रमा को उस पर विश्वास हो गया। उसकी ओर ध्यान से देखा। रमा को अपनी तरफ ताकते देखकर बोला, "आप हावड़ा ही उतरेंगे या कहीं और जाएंगे?"

रमा : "बाबा मैं अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगा। रुपए का प्रबंध करके फिर जाऊंगा।"

बूढ़ा : "तुम्हें कितने रुपए चाहिए, मुझसे ले लो, जब चाहे दे देना। घर कहां है?"

रमा : "मैं इलाहाबाद में रहता हूं।"

बूढ़ा : "प्रयागराज की क्या बात है। मैं भी त्रिवेणी का स्नान करके आ रहा हूं। तो कितने रुपए निकालूं?"

रमा : "मैं जाते ही रुपए न दे सकूंगा, ये समझ लो।"

बूढ़ा : "मेरे दस-पांच रुपए लेकर तुम भाग थोड़े जाओगे। दस रुपए में तुम्हारा काम चल जाएगा?"

रमा : "हां, इतना ठीक है।"

टिकट चेकर को किराया देकर रमा बूढ़े से बातें करने लगा। रमा को मालूम हुआ कि बूढ़ा जाति का खटिक है। कलकत्ता में सब्ज़ी की दुकान है, घर तो बिहार में है, मगर चालीस साल से कलकत्ते में है। देवीदीन नाम है। इस समय बद्रीनाथ की यात्रा करके लौट रहा है।

रमा : "तुम बद्रीनाथ यात्रा कर आए। वहां तो पहाड़ों की बड़ी चढ़ाइयां हैं?"

देवी : "भगवान की मर्जी होती है तो सब हो जाता है बाबूजी।"

रमा : "तुम्हारे बाल-बच्चे तो कलकत्ते में होंगे।"

देवी : "बाल-बच्चे तो सब भगवान के घर चल दिए। चार बेटे थे। दो लड़कियों का विवाह हो चुका था। मैं बैठा हुआ हूं। अपने बोए हुए बीज को किसान ही तो काटता है। बुढ़िया अभी जीती है। देखें, हम दोनों में पहले कौन जाता है। वह कहती है पहले मैं जाऊंगी। मैं कहता हूं पहले मैं जाऊंगा। तुम कभी आना तो दिखाऊंगा। अब भी उसे गहनों का शौक है।"

"आदमी की हवस ऐसी होती है। न कोई आगे न कोई पीछे मगर हवस नहीं जाती। कोई न कोई गहना बनवाती रहती है। न जाने कब उसका पेट भरेगा। कलकत्ते में कहां काम करते हो भैया?"

रमा : "अभी तो जा रहा हूं, किस्मत आज़माने। देखूं कोई नौकरी-चाकरी मिलती है या नहीं।"

देवी : "तो फिर मेरे यहां ठहरना। नीचे दो कोठरियां हैं और एक दालान। ऊपर एक कोठरी और छत है। आज बेच दूं तो दस हज़ार मिले। ऊपरवाली कोठरी तुम्हें दे दूंगा। जब कहीं काम मिल जाए अपना घर ले लेना। पचास साल हुए घर से भाग कर हावड़ा गया था तब से सुख भी देखे दुख भी।" इतनी देर में उसने अपनी ज़िंदगी की सारी कहानी कह सुनाई। रमा को भी अपना फर्ज़ी किस्सा कहना पड़ा।

जब रमानाथ ऊपर से नीचे उतर रहा था, उस समय जालपा को तनिक भी संदेह न था कि वह घर से भाग रहा है। उसने वह पत्र पढ़ लिया था। उसे इतना गुस्सा आ रहा था कि जाकर रमा को खूब खरी-खरी सुनाए मगर एक ही क्षण में गुस्से पर काबू पा लिया। विचार आया, कहीं ऐसा तो नहीं हुआ है कि, सरकारी रुपए खर्च कर डाले हों। रतन के रुपए सर्राफ को दे दिए होंगे। उस दिन रतन को

दिखलाने के लिए शायद वह सरकारी रुपए उठा लाए थे। उसी को पूरा करने के लिए रुपयों की जरूरत होगी। यह सोचकर उसे रमा पर गुस्सा आया। ये मुझसे इतना पर्दा करते थे। क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि दुनिया में अमीर भी होते हैं, गरीब भी। क्या सभी औरतें ज़ेवरों से लदी हुई होती हैं। पेट काट कर, चोरी या बेईमानी करके तो ज़ेवर नहीं बनवाए जाते। क्या उन्होंने मुझे इतना स्वार्थी समझ लिया है?

उसने सोचा, रमा अपने कमरे में होंगे। चल कर पूछूं कौन-कौन से ज़ेवर चाहते है। मगर कमरे में आई तो उनका पता न था। साइकिल रखी हुई थी। दरवाज़े से झांका, सड़क पर भी नहीं। कहां चले गए? दोनों लड़के स्कूल गए हुए थे। अब किसको भेजे कि जाकर उन्हें बुला लाए। तुरंत ऊपर गई। गले का हार और कंगन रूमाल में बांधे। सड़क पर आकर चुंगी कचहरी का तांगा लिया। रास्ते में दोनों तरफ देखती जाती थी। कोचवान से बार-बार घोड़ा बढ़ाने को कहती थी। जब वह दफ्तर पहुंची तो ग्यारह बज गए थे। सैकड़ों आदमी इधर-उधर दौड़ते नज़र आते थे। किससे पूछे? दफ्तर का चपरासी दिखाई दिया। उसे बुला कर कहा, "सुनो जी, जरा बाबू रमानाथ को तो बुलाओ।"

चपरासी : "उन्हीं को तो बुलाने जा रहा हूं। आप क्या उनके घर से ही आ रही हैं?"

जालपा : "हां, मैं तो घर ही से आ रही हूं। दस मिनट पहले वह घर से चले थे।"

चपरासी : "यहां तो नहीं आए।"

जालपा सोच में पड़ गई। उसका सीना धक-धक् करने लगा। आंखें भर-भर आने लगीं। चपरासी से बोली, "ज़रा बड़े बाबू से कह

दो। नहीं, चलो मैं ही चलती हूं।"

बड़े बाबू खबर पाते ही बाहर निकल आए। जालपा ने नमस्ते करके कहा, "बाबूजी, आप को कष्ट हुआ। उन्हें घर से चले हुए पंद्रह बीस मिनट हुए मगर अभी यहां नहीं पहुंचे। आपसे कुछ कहा तो नहीं?"

रमेश : "मुझसे तो कुछ कहा नहीं। वह तो समय के बड़े पाबंद हैं। कहां रह गए?"

जालपा : "मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूं।"

रमेश : "हां, हां कमरे में आ जाओ। कहीं बैठे शतरंज खेल रहे होंगे।"

जालपा : "मुझे संदेह है कि वह कहीं और न चले गए हो। अभी आधा घंटा हुआ उन्होंने मेरे नाम एक पत्र लिखा था। उनके ज़िम्मे कोई सरकारी रकम तो नहीं आई?"

रमेश : "आज उन्हें तीन सौ रुपए जमा करने हैं। परसों की आमदनी उन्होंने जमा नहीं की थी। रुपए थैली में रखे और नोट जेब में रख कर घर चले गए। बाज़ार में किसी ने नोट निकाल लिए।"

जालपा : "ऐसा तो आए दिन होता रहता है, किसी ने निकाल लिए होंगे। मारे शर्म के उन्होंने मुझसे न कहा। ज़रा भी संकेत करते तुरंत रुपए निकाल कर दे देती।"

रमेश : "क्या घर में रुपए हैं?"

जालपा : "तीन सौ चाहिए ना, अभी ले कर आती हूं।"

जालपा ने सर्राफे जाकर हार बेच डालने का फैसला किया। सर्राफे में इस सिरे से उस सिरे तक एक चक्कर लगाया मगर किसी दुकान पर जाने की हिम्मत न हुई। आखिर एक दुकान पर एक बूढ़े सर्राफ को देख कर उत्साह बढ़ा। सर्राफ बड़ा घाघ था। जालपा ने हार

दिखा कर कहा, "मैं इसे बेचना चाहती हूं।" सर्राफ ने साढ़े तीन सौ दाम लगाए और बढ़ते समय तक चार सौ तक पहुंचा। छः सौ की चीज़ चार सौ में देते जालपा को दुख हो रहा था लेकिन मजबूरी थी। रुपए लिए और चल खड़ी हुई।

जिस हार को उसने इतने चाव से खरीदा था उसे आज आधे दामों बेचकर भी इसलिए दुख न हुआ कि जिस समय रमा को मालूम होगा कि उसने रुपए चुका दिए तो उन्हें कितनी खुशी होगी। यह सोचती हुई वह दफ्तर पहुंची।

रमेश : "क्या हुआ घर पर मिले?"

जालपा : "क्या अभी तक यहां नहीं आए?" यह कह कर उसने नोट रमेश की तरफ बढ़ा दिए।

रमेश : "ठीक है। मगर समझ में नहीं आता कि वो अब तक हैं कहां? मुझे तो बड़ी चिंता हो रही है।"

जालपा जब घर चली तो उसने सोचा, रमा अगर घर पर बैठे होंगे तो वह जा कर पहले उन्हें खूब आड़े हाथों लेगी और खूब लज्जित करने के बाद यह खबर सुनाएगी। लेकिन जब घर पहुंची तो रमानाथ का कहीं नामोनिशान न था।

जागेशरी : "कहां चली गई थी धूप में बहू?"

जालपा : "एक काम से चली गई थी। आज उन्होंने खाना भी न खाया। न जाने कहां चले गए?"

जागेशरी : "दफ्तर गए होंगे।"

जालपा : "नहीं, दफ्तर नहीं गए। वहां से चपरासी पूछने आया था।"

यह कहती हुई वह ऊपर चली गई। उसके कान दरवाज़े की तरफ लगे हुए थे। चार बजे तक तो जालपा को कोई चिंता न थी। जब शाम हो गई तो जालपा घबराने लगी। आखिर कहां चले गए? मालूम नहीं जेब में कुछ है या नहीं? चिराग़ जल गए तो उससे रहा न गया। सोचा, शायद रतन से कुछ पता चले। उसके बंगले पर गई तो मालुम हुआ, आज तो वो इधर आए ही नहीं। फिर जालपा ने उन सभी मैदानों और

पार्कों को छान डाला जहां दोनों जाते थे। घर में कदम रखते ही जब उसे मालूम हुआ कि वो अब तक नहीं आए तो उसकी आंखों से आंसू बह निकले।

जागेशरी : "लड़के इस समय कहां जाएंगे। थोड़ी देर और देख लो फिर खाना उठा कर रख देना।"

जालपा ने दफ्तर की कोई बात उससे न कही। जागेशरी घबरा जाती और रोना-पीटना शुरू कर देती। वह ऊपर जाकर लेट गई और फूट-फूट कर रोने लगी। आज उसने पहली बार माना कि सब उसकी करनी का फल है। माना कि उसने ज़ेवरों के लिए कभी ज़िद नहीं की थी लेकिन उसने कभी साफ तौर पर मना भी तो नहीं किया। अगर चोरी हो जाने के बाद उसने कोहराम न मचाया होता तो आज यह नौबत क्यों आती। वह जानती थी, रमा रिश्वत लेता है। उसका खर्च आमदनी से ज्यादा है फिर भी उसने कभी नहीं टोका।

एक सप्ताह बीत गया। रमा का कहीं पता न था। कोई कुछ कहता कोई कुछ। रमेश बाबू कई बार आकर पूछ जाते। केवल इतना पता चला कि रमानाथ ग्यारह बजे स्टेशन की तरफ गए थे। मुंशी दयानाथ का विचार है, यद्यपि यह बात उन्होंने किसी से न कही, रमानाथ ने आत्महत्या कर ली। सास और श्वसुर दोनों ही जालपा को दोष दे रहे हैं। साफ कह रहे हैं कि यही उसकी जान की गाहक हुई। पूछो, थोड़ी सी तो आपकी आमदनी, फिर तुम्हें रोज़ सैर-सपाटे दावत-तमाशे की क्यों सूझती थी। जालपा पर किसी को दया न आती, कोई उसके आंसू न पोंछता।

एक दिन दयानाथ लौटे तो मुंह लटका हुआ था। जागेशरी ने पूछा, "क्या है, किसी से बहस हो गई क्या?"

दयानाथ : "नहीं जी, इन तक़ाज़ों के मारे हैरान हो गया। जिधर

जाओ नोचते दौड़ते हैं, न जाने कितना कर्ज ले रखा है? आज तो मैंने साफ कह दिया, मैं कुछ नहीं जानता, जाकर मेम साहब से मांगो।"

यह शब्द जालपा के कानों में पड़ गए। इन सात दिनों में उसका रूप ऐसा बदल गया था कि पहचानना मुश्किल था। रोते-रोते आंखें सूज गईं। बोली, "हां आप उन्हें सीधे मेरे पास भेज दीजिए। मैं या तो उन्हें समझा दूंगी या उनके दाम चुका दूंगी।"

जालपा : "उसके गहने मौजूद हैं, मैं उसकी चीज़ें वापस कर दूंगी, बहुत होगा दो चार रुपए हर्जाने के ले लेगा।" इतने में रतन आ गई और गले लगाते हुए बोली, "अब तक कोई खबर नहीं मिली?"

जालपा ने सोचा यह पराई होकर इतनी हमदर्द है और यहां अपने ही सास-ससुर हाथ धोकर पीछे पड़े हैं। इन अपनों से तो पराए अच्छे। आंखों में आंसू भर कर बोली, "अभी तो खबर नहीं बहन।"

रतन : "बात क्या हुई? तुमसे झगड़ा तो नहीं हो गया?"

जालपा : "ज़रा भी नहीं। उन्होंने नोटों के चोरी होने का मुझे बताया ही नहीं। अगर संकेत कर देते तो मैं रुपए दे देती। जब मैं उनकी तलाश में दफ्तर गई तब पता चला। मैंने उसी समय रुपए जमा कर दिए।"

दोनों बैठी बातें करती रहीं। रतन ने पूछा, "कहीं घूमने चलती हो?"

जालपा : "नहीं बहन, घरवाले यूं ही पीछे पड़े हुए हैं, तब तो ज़िंदा ही नहीं छोड़ेंगे। कहां जा रही हो?"

रतन : "सर्राफे तक जाना है, दो-एक चीज़ें देखूंगी। बस मैं तुम्हारे जैसा कंगन चाहती हूं।"

जालपा : "ऐसा कंगन तो बना बनाया मुश्किल से मिलेगा। अगर बहुत जल्दी हो तो मेरा ही कगंन ले लो। मैं फिर बनवा लूंगी।"

रतन : "वाह, तुम अपना कंगन दे दो तो क्या कहना है। छः सौ का था ना?"

जालपा ने कंगन निकालकर रतन के हाथ में पहना दिए। रतन खुश हो गई।

"मगर अभी मैं सब रुपए न दे सकूंगी। अगर दो सौ रुपए दे दूं तो कुछ हरज है?"

जालपा : "कुछ भी हरज नहीं। कुछ भी मत दो।" उसके आंसू निकल आए। रतन देखकर बोली, "इस समय रख लो बहन फिर ले लूंगी।"

जालपा : "क्यों, क्या मेरे आंसू देखकर? यह चीज़ मुझे जान से ज़्यादा प्यारी थी। तुम्हारे हाथ में देखकर मुझे इतनी ही खुशी होगी जितनी अपने हाथों में देखकर।"

रतन के जाने के बाद जालपा पांच सौ रुपए लेकर दयानाथ के पास गई। "ये रुपए चरनदास के पास भिजवा दीजिए। बाकी रुपए दो-चार दिन में दे दूंगी।"

दयानाथ : "ये रुपए कहां से मिल गए?"

जालपा : "रतन के हाथ कंगन बेच दिया।"

एक महीना बीत गया। इलाहाबाद के एक अखबार में एक सूचना प्रकाशित हो रही है, जिसमें रमानाथ का पता लगाने वाले को पांच सौ रुपए पुरस्कार देने की घोषणा है। मगर अभी कहीं से कोई ख़बर नहीं आई। जालपा दुख और चिंता से घुलती जाती है। उसकी दशा देखकर दयानाथ को भी उस पर दया आने लगी। आखिर उन्होंने अपने समधी दीनदयाल को लिखा, "आप आकर कुछ दिनों के लिए बहू को ले जाइए।" दीनदयाल घबराए हुए आए। मगर जालपा ने मैके जाने से इनकार कर दिया।

दीनदयाल : "आखिर चलने में क्या हरज है?"

जालपा : "यहां मां जी और लाला को छोड़कर जाने को जी नहीं करता। जब रोना ही लिखा है तो रोऊंगी। जब हसंना था तब हसंती थी, अब रोना है तो रोऊंगी। वह कहीं भी चले गए हों लेकिन मुझे हर दम यहां बैठे दिखाई देते हैं। वह घर की एक-एक चीज़ में बसे हुए हैं।"

रमानाथ को कलकत्ता आए दो माह से अधिक हो गए। अभी तक देवीदीन के घर पर पड़ा हुआ है। उसे यही धुन सवार रहती है कि रुपयों का ख़ज़ाना कैसे हाथ आए। भांति-भांति के उपाय सोचता, लेकिन घर से बाहर नहीं निकलता। जब खूब अंधेरा हो जाता है तो मुहल्ले के पुस्तकालय में अवश्य जाता है। अपने शहर की खबरों के लिए वह बेचैन रहता है। उसने वह सूचना देखी जो दयानाथ ने अखबारों में छपवाई थी, लेकिन उसे इस पर विश्वास नहीं हुआ। कौन जाने पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने के लिए जाल फैलाया हो। एक दिन अखबार में जालपा का एक पत्र छपा हुआ मिला। उसने लिखा था, तुम्हारे ज़िम्मे किसी की रक़म नहीं, तुम किसी तरह का संदेह न करो। मैंने पाई-पाई चुका दिया है। रमा का दिल ललचा उठा, लेकिन विचार आया, यह भी पुलिस की शरारत होगी। क्या सबूत है कि जालपा ही ने यह पत्र लिखा। यदि यह भी मान लिया जाए कि घर वालों ने रुपयों का भुगतान कर दिया होगा, मगर सारे शहर में उसकी बदनामी हो रही होगी। पुलिस में खबर हो चुकी होगी। उसने तय किया, मैं नहीं जा सकता। जब तक कम से कम पांच हज़ार रुपए हाथ न आ जाएंगे, वह घर जाने का नाम न लेगा और अगर अब तक रुपयों का भुगतान न हुआ और पुलिस उसकी तलाश में है तो वह कभी घर नहीं जा सकता।

देवीदीन के घर भी ऊपर वाली कोठरी में वह रहता है। देवीदीन का काम चिलम पीना और गप्पें मारना था। दुकान का सारा काम बुढ़िया करती थी। देवीदीन बैठा रामायण, तोता मैना, रास लीला या माता मरियम की कहानी पढ़ा करता था। रमा के आने के बाद उसे अंग्रेजी पढ़ने का शौक़ चर्राया है। सवेरे ही प्राइमर लेकर आ बैठता है और नौ दस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता है। मगर बुढ़िया को रमा का आसन जमाना अच्छा नहीं लगता। वह उसे अपनी मुनीम तो बनाए हुए है लेकिन उतने ज़रा से काम के लिए वह इतना बड़ा भार नहीं उठाना चाहती, लेकिन वह कुछ कह नहीं सकती। रमा ने अपने को ब्राह्मण कह रखा है और धर्म का स्वांग रचाए हुए है। बुढ़िया के स्वभाव से परिचित है, लेकिन करे क्या, बेहयाई करने पर मजबूर है।

रात को जब रमा लेटा तो वह सोच रहा था मैं इतना नीच हो गया हूं कि खाने और कपड़े के लिए मुझे दान लेना पड़ता है। वह दो महीने से देवीदीन के घर पड़ा था मगर देवीदीन उसे मेहमान समझता था। उसने सोचा कि उसी समय थाने में जाकर अपनी कहानी सुनाए, यही तो होगा कि दो तीन साल की सज़ा हो जाएगी। इस तरह ज़िंदा रहने से फायदा ही क्या। फिर उसने फैसला किया, कल वह काम की तलाश में निकलेगा।

अभी रमा हाथ-मुंह धो रहा था कि देवीदीन, प्राइमर लेकर आ पहुंचा और बोला, "जिस दिन प्राइमर खत्म होगी, महावीर जी को सवा सेर लडडू चढ़ाऊंगा। अरे तुमने तीन महीने से कोई चिट्ठी घर पर नहीं भेजी, घबराते तो होंगे वे लोग।"

रमा ने अब तक अपनी असलियत को छुपाया था। कई बार उसने चाहा कि देवीदीन से सारा हाल कह देगा, मगर बात होंठों तक आकर रुक जाती थी। बोला, "मैं घर से भाग आया हूं।"

देवीदीन "मैं जानता हूं। घरवाली से ठन गई होगी। वह कहती होगी, अलग रहूंगी या गहने के लिए ज़िद करती होगी।"

रमा : "कुछ ऐसी ही बात थी। वह तो गहनों के लिए ज़िद न करती थी लेकिन पा जाती थी तो खुश हो जाती थी और मैं प्रेम के नशे में आगा-पीछा कुछ न सोचता था।"

देवीदीन : "सरकारी रकम तो नहीं उड़ा दी।"

यह सुनकर उसके चेहरे का रंग उड़ गया। देवीदीन ताड़ गया। बोला, "दिल की लगन बड़ी बेढ़ब होती है। गबन के हजारों मुकदमे हर साल होते हैं। देखा जाए तो एक ही बात निकलेगी, गहना। दस बीस वारदातें मैं अपनी आंखों से देख चुका हूं। यह रोग ही ऐसा है। दूसरों को क्या कहूं, मैं ही तीन साल की सज़ा काट चुका हूं। जवानी की बात है, जब इस बुढ़िया पर जोबन था। मैं डाकिया था। यह कानों के झुमकों के लिए जान दे रही थी, सोने ही के लूंगी। एक दिन तीस रुपए के मनीआर्डर पर मैंने झूठा दस्तख़त करके रुपए उड़ा लिए। झूमके लाकर दिए। एक ही महीने में चोरी पकड़ी गई। तीन साल की सजा हो गई। सजा काट कर निकला तो यहां भाग आया। हां, चिट्ठी भेज दी। बुढ़िया खबर पाते ही चली आई। तुम भी एक चिट्ठी भेज दो, नहीं पुलिस तुम्हारी टोह में होगी।"

रमा : "नहीं दादा, पुलिस से अधिक मुझे घर वालों का डर है।"

देवीदीन : "कहो तो मैं तुम्हारे घर चला जाऊं। तुम्हारे बाप से मिलूंगा। तुम्हारी मां को समझाऊंगा। तुम्हारी घरवाली से बातचीत करूंगा। फिर जैसा ठीक समझना करना।"

रमा : "लेकिन कैसे पूछोगे दादा?"

देवीदीन : "भैया, इससे आसान तो और कोई काम नहीं। एक जनेऊ गले में डाला और ब्राह्मण बन गए, फिर चाहे हाथ देखो चाहे

कुंडली बांचो। सब तरह-तरह के सवाल करेंगे और सब पता चल जाएगा।"

रमा : "कहां जाओगे दादा, कष्ट होगा।"

देवी : "माघ का स्नान भी तो करूंगा। मैं कहता हूं तुम भी चलो। मैं रंग-ढ़ंग देखकर तुमसे कह दूंगा। अगर कोई खटका न हो घर चले जाना। खटका हो तो मेरे साथ ही लौट आना।"

रमा : "तुम कहते हो तो चलूंगा मगर, मुझे कुछ कपड़ों की ज़रूरत पड़ेगी। घर पहुंच कर तुम्हारे रुपए दे दूंगा।"

देवी : "और तुम्हारी गुरु दक्षिणा भी वहीं दे दूंगा।"

रमा : "गुरु दक्षिणा भी मुझे देनी होगी। तुमने मुझे जो गुण सिखाए उम्रभर काम आएंगे। मां बाप के बाद जितना प्रेम तुम से है उतना और किसी से नहीं। तुमने ऐसे गाढ़े समय में मेरी बांह पकड़ी जब मैं मंझधार में जा रहा था।"

देवीदीन ने उसे बाज़ार चलने को कहा। रमा चलने को तैयार हुआ लेकिन दरवाजे तक आ कर रुक गया।

देवी : "क्यों रुक गए? क्या डर रहे हो? पुलिस तुम्हारी ओर ताकेगी भी नहीं।"

देवीदीन ने बहुत समझाया मगर रमा जाने पर राज़ी न हुआ। देवीदीन अकेला ही चला गया और घंटे भर बाद लौटा। "यह देखो कपड़ों का नमूना लाया हूं। इनमें जो पसंद हो ले लो।"

रमा : "इतने मंहगे कपड़े क्यों लाए?"

देवी : "सस्ते थे मगर विलायती थे।"

रमा : "तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते?"

देवी : "इधर बीस साल से तो नहीं पहने। जिस देश में रहते हैं, जिसका अन्न, जल खाते पीते हैं, उसके लिए इतना भी न करें तो

जीवन पर धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी स्वदेशी की भेंट कर चुका हूं। अकेले ऐसे पट्ठे थे कि तुमसे क्या कहूं। दोनों विदेशी कपड़ों की दुकानों पर तैनात थे। मजाल थी कि कोई ग्राहक दुकान पर आ जाए, हाथ जोड़कर, घिघिया कर, धमका कर सबको फेर लेते थे। बजाजों ने जाकर कमिश्नर से फरियाद की। सुन कर आग हो गया। बीस फौजी गोरे भेजे। गोरों ने दोनों भाइयों से कहा, यहां से चले जाओ, मगर वो अपनी जगह से न हिले। सबों ने डंडों से पीटना शुरू कर दिया। दोनों बहादुर डंडे खाते थे, पर जगह से न हिलते थे। अगर दोनों अपने डंडे संभाल लेते तो उन बीसों को मार भगाते। लेकिन हाथ उठाना तो बड़ी बात है, सिर तक न उठाया। दोनों गिर पड़े तो अस्पताल भेज दिया। उसी रात को दोनों सिधार गए। जब जनाजा चला तो एक लाख आदमी साथ थे। दोनों बेटों को गंगा की भेंट करके मैं सीधा बजाजे पहुंचा और उसी दुकान पर खड़ा हो गया। ग्राहक के नाम पर चिड़िया का भूत तक न दिखाई दिया। आठ दिन वहां से हिला तक नहीं। न भूख थी न प्यास। नौवें दिन दूकानदारों ने कसम खाई कि विलायती कपड़े न मंगाएंगें, तब बाजार से हटा। तबसे विदेशी दियासलाई तक घर में नहीं लाया।

रमा : "दादा तुम सच्चे वीर हो। और वे दोनों लड़के भी सच्चे योद्धा थे।"

देवीदीन शहीदों की शान से बोला, "अरे बड़े-बड़े आदमियों से कुछ न होगा, ये तो रोना जानते हैं। बड़े-बड़े देशभक्तों को विलायती शराब के बिना चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज नहीं मिलेगी। दिखाने को दस बीस कुर्ते गाढ़े के बनवा लिए! सब के सब भोग विलास में अंधे हो रहें हैं। उस पर दावा ये कि हम देश के लिए मरते हैं। गरीबों को लूट कर विलायत का घर

भरना तुम्हारा काम है, हां रोते जाओ! विलायती शराबें उड़ाओ, विलायती बर्तनों में खाओ, विलायती दवाइयां पियो, विलायती भाषा बोलो! विलायती ठाठ बनाओ मगर देश के नाम को रोते जाओ! अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तुम इतने ऐंठते हो, जब तुम्हारा राज होगा तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।"

इतना कह कर देवीदीन कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर बोला, "अच्छा अब खाना पकाओ, सांझ को चल कर कपड़े दर्जी को दे देंगे।" जब अंधेरा हो गया तो देवीदीन ने आकर कहा, "चलो कपड़े सिलवा लें।"

रमा सिर पर हाथ रखे बैठा था, चेहरा उदास था। फिर बोला, "दादा, मैं घर न जाऊंगा।"

देवीदीन ने पूछा, "क्यों क्या बात हो गई?"

रमा : "कौन से मुंह लेकर जाऊं। मुझे तो डूब मरना चाहिए था।" यह कहते रो पड़ा।

कई दिनों के बाद कोई नौ बजे रमा पुस्तकालय से लौट रहा था कि रास्ते में उसे कई आदमी किसी शतरंज के नक्शे की बात करते हुए मिले। यह नक्शा वहां के एक अख़बार में छपा था, उसे हल करने के लिए पचास रुपए का इनाम का वादा था। उन आदमियों से मालूम हुआ कि वह नक्शा बहुत मुश्किल है। वहां के बड़े-बड़े शतरंजबाज़ों ने उसे हल करने की कोशिश की मगर नाकाम रहे। रमा वह नक्शा देखने के लिए बेचैन हो गया। पूछा, "आप लोगों में किसी के पास नक्शा है।" उन्होंने एक साधारण से दिखने वाले व्यक्ति को यह सवाल करते सुना तो एक ने कहा, "हां, है तो मगर तुम देख कर क्या करोगे? यहां अच्छे-अच्छे डुबकी खा रहे हैं। एक शतरंजबाज ने तो उसे हल करने के लिए अपने पास से सौ रुपए देने का वादा किया है।"

फिर उन्होंने रमा को नक्शा दिखाया। रमा को याद आया, यह नक्शा कहीं देखा है, सोचने लगा कहां? रमा ने नक्शा नकल किया और घर चला गया। रमा ने उस नक्शे पर दिमाग लड़ाना शुरू किया। लेकिन चालें सोचने के बजाय वह यही सोच रहा था कि वह नक्शा कहां देखा। आधी रात के बाद उसे याद आया कि राजा साहब ने यह नक्शा दिया था और लगातार तीन दिन दिमाग़ लड़ाने के बाद उसने हल किया था। फिर तो उसे एक-एक चाल याद आ गई और नक्शा हल हो गया। सुबह रमा ने देवीदीन से पूछा, "दादा, जानते हो सदाक़त अखबार का दफ्तर कहां है?"

देवी : "जानता क्यों नहीं। यहां कौन सा अखबार है जिसका पता मुझे मालूम न हो।"

रमा : "आज ज़रा वहां तक जाओगे?"

देवी : "मुझे भेजकर क्या करोगे? बुढ़िया बिगड़ती है, उसे वचन दे चुका हूं कि स्वदेशी-विदेशी के झगड़े में न पड़ूंगा। न किसी अखबार के दफ्तर जाऊंगा।"

रमा : "मेरा एक बड़ा जरूरी काम है। उस अख़बार में शतरंज का एक नक्शा छपा है जिस पर पचास रुपए का ईनाम है। जवाब छप जाए तो मुझे वह ईनाम मिल जाए। अखबारों के दफ्तर में प्रायः खुफिया पुलिस के आदमी आते जाते हैं। यही डर है नहीं मैं खुद जाता।"

देवी : "तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं है।"

रमा : "तो फिर क्या डाक से भेज दूं।"

देवी : "नहीं, डाक में सादा लिफाफा इधर-उधर हो सकता है। यह भी तो हो सकता है कि अखबारवाले धांधली कर बैठें और तुम्हारा जवाब अपने नाम से छाप कर रुपए हज़म कर लें। लाओ, मैं

चला जाऊं। बुढ़िया से कोई बहाना करूंगा।"

बुढ़िया ने मंडी से आते ही पूछा तो रमा ने बहाना किया, "मुझे तो नहीं मालूम।"

बुढ़िया ने मजदूर के सिर से टोकरा उतरवाया और बोली, "चरस की चाट लगी होगी और क्या, मैं मर-मर कर कमाऊं और यह बैठे-बैठे मौज उड़ाएं, चरस पिए।"

रमा जानता था देवीदीन चरस पीता है, लेकिन बुढ़िया को ठंडा करने के लिए बोला, "क्या? चरस पीते हैं? मैंने तो नहीं देखा।"

बुढ़िया : "उनसे कोई नशा छूटा है? उस भले आदमी को रत्ती भर फ़िकर नहीं होती, कभी तीरथ है, कभी कुछ, कभी कुछ, कभी कुछ, मेरा तो नाक में दम आ गया। भगवान उठा लेते तो गला छूट जाता तब जग्गू कहां मिलेगी जो कमा-कमा के गुलछर्रे उड़ाने को दिया करेगी, भैया जरा आज का खर्चा तो टांक लो।"

बुढ़िया छाबड़ियों में चीज़ें लगाती जाती थी, हिसाब भी लिखती जाती थी, फिर उसने चिलम भरी और पीने लगी। बोली, "दूसरी औरत होती तो घड़ीभर उनके साथ निबाह न होता। सुख भोगना लिखा होता तो जवान बेटे क्यों चल देते। उसने स्वदेशी के झगड़े में पड़ कर मेरे लालों की जान ली। आओ, इस कोठरी में भैया, तुम्हें मुगदर की जोड़ी दिखाऊं। दोनों इस जोड़ी के पांच सौ हाथ फेरते थे।"

अंधेरी कोठरी में जाकर रमा ने मुगदरों की जोड़ी देखी साफ सुथरी जैसे किसी ने अभी फेर कर रखा हो।

बुढ़िया ने बताया, "लोग कहते थे यह जोड़ी महाबामन को दे दे, मुझे देख देख कर दुख होगा। मैंने कहा, यह जोड़ी मेरे लालों की जोड़ी है। यही मेरे दोनों बेटे हैं।

आज रमा के दिल में बुढ़िया के लिए असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई। कितना पवित्र प्रेम है जिसने लकड़ी के उन दो टुकड़ों को जीवन दे रखा है। रमा ने जग्गू को लालची, पैसे पर जान देने वाली, कठोर समझा था। आज उसे मालूम हुआ कि बुढ़िया का दिल कितना कोमल, कितना दिलेर और स्नेह से पूर्ण है। बुढ़िया ने उसकी ओर देखा तो उसकी आंखों में आंसू भरे हुए थे। आज उन दोनों के दिल में स्नेह के संबंध बंध गए।

बुढ़िया ने कहा, "बड़े मीठे संतरे लाई हूं, एक लेकर चख तो।"

रमा ने संतरा खाते हुए कहा, "आज से मैं तुम्हें अम्मा कहा करूंगा।"

बुढ़िया की आंखों से मोती की दो बूंदें निकल पड़ीं।

इतने में देवीदीन आकर खड़ा हो गया। बुढ़िया ने पूछा, "इतने सवेरे किधर सवारी गई थी सरकार की?"

देवी : "कहीं नहीं, जरा एक काम से गया था।"

बुढ़िया : "काम क्या, तुम चरस या गांजे की टोह में गए होगे। इस बुढ़ापे में नशे की सूझती है। जब तक न बताओगे घर में घुसने न दूंगी।"

देवी : "क्या करेगी पूछ कर। एक अखबार के दफ्तर में गया था जो चाहे सजा दे।"

बुढ़िया : "अखबार वाले दंगा मचाते हैं और गरीबों को जेल ले जाते है। आज बीस साल से देख रही हूं। क्या बुढ़ापे में जेल की रोटियां तोड़ोगे?"

देवी ने एक लिफ़ाफा रमा को देकर कहा, "ये रुपए हैं, भैया गिन लो। ये रुपए वसूल करने गया था। जी न मानता हो तो आधे ले लो।"

जब रमानाथ ने सारा किस्सा कहा तो बुढ़िया को संतोष हुआ। खुश हो कर बोली, "इसमें से मेरे लिए क्या लाओगे बेटा?"

रमा ने लिफाफा उसके सामने रख कर कहा, "तुम्हारे ही रुपए तो हैं अम्मां।"

"फिर क्यों नहीं घर भेज देते?"

"मेरा घर यही है अम्मा कोई दूसरा घर नहीं है।"

बुढ़िया ने नोटों को गिन कर कहा, "पचास हैं बेटा, पचास मुझसे और ले ले। चाय का पतीला रखा हुआ है, चाय की दुकान खोल लो। यहीं एक ओर चार पांच मोढ़े और एक मेज रख लेना।"

देवी :"तब चरस के पैसे मैं उस दुकान से लिया करूंगा।"

बुढ़िया : "कौड़ी-कौड़ी का हिसाब ले लूंगी, इस फेर में न रहना।"

रमा अपने कमरे में गया तो उसका दिल बहुत खुश था। वह नहा धोकर पूजा स्वांग करने बैठा कि बुढ़िया आ कर बोली, "बेटा, तुम्हें रोटी पकाने में कष्ट होता है। मैंने एक मिसरानी ठीक कर दी है, वह तुम्हारा खाना पकाया करेगी।"

रमा :"जब मेरी मां हो गई तो फिर क्या फ़र्क, मैं तुम्हारे हाथ का खाना खाऊंगा।"

बुढ़िया : "अरे नहीं बेटा, मैं तुम्हारा धर्म नहीं लूंगी। कहां तुम ब्राह्मण कहां हम खटिक।"

रमा : "मैं तुम्हारी रसोई में खाऊंगा। जब मां-बाप खटिक तो बेटा भी खटिक ही है। अदमी पाप से नीचा हुआ है, खाने पीने से नीचा नहीं होता। प्रेम से जो खाना मिलता है वही पवित्र होता है।"

जब से रमा चला गया था, रतन को जालपा की बहुत चिंता हो गई थी। वह किसी बहाने से उसकी सहायता करते रहना चाहती थी।

उसके साथ यह भी चाहती थी कि जालपा किसी तरह ताड़ न जाए। अगर कुछ रुपए खर्च करके भी वह रमा का पता लगा सकती तो खुशी से खर्च कर देती। जालपा की रोती हुई आंखें देखकर उसे दुख होता था, वह उसे खुश देखना चाहती थी। वह रोज़ जालपा के घर आती थी। वहां घड़ीभर हंस बोल लेने से उसका दिल खुश हो जाता था।

एक दिन वह ग्रामोफोन लाई और शाम तक बजाती रही। दूसरे दिन एक ताज़ा मेवों की टोकरी लाकर रख गई। जब भी आती कोई न कोई उपहार लाती। जागेशरी के पास भी बैठ इधर-उधर की बातें करती। एक दिन आई तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। जालपा ने पूछा, "क्या आज तबीयत ठीक नहीं है।"

रतन, "तबियत तो ठीक है मगर आज रात भर जागना पड़ा। रात से वकील साहब को बहुत तकलीफ है। जाड़ों में उन्हें दमा का दौरा हो जाता है। कलकत्ते में एक मशहूर वैद्य हैं। अब उन्हीं से इलाज कराने का विचार है। कल चली जाऊंगी। मुझे साथ ले जाने का विचार नहीं है। कहते हैं वहां तकलीफ होगी। लेकिन मेरा दिल नहीं मानता ।"

जालपा : "फिर कब तक आओगी?"

रतन : "कुछ ठीक नहीं, एक सप्ताह में आ जाऊं या महीने दो महीने लग जाएं। तुम भी चलती तो बड़ा मजा आता। मेरा दिल तो कहता है बाबू जी कलकत्ते ही में हैं।"

जालपा : "कैसे चलूं बहन, यहां दिन भर आस लगी रहती है, कोई खबर आती होगी।"

कलकत्ते में वकील साहब ने पहले ही ठहरने का इंतज़ाम कर लिया था। रतन ने महाराज और टीमल कहार को साथ ले लिया था। यात्रा के कारण वकील साहब थक गए थे।

रतन सुबह से आधी रात तक उनके पास बैठी रहती। वकील साहब चाहते थे कि वह यहां से हट जाए तो दिल खोल कर कराहें। उसे तसल्ली देने के लिए वह अपनी दशा छुपाने की कोशिश करते रहते थे। वह जब भी कुछ पूछती तो कह देते, आज तो मन बहुत हलका है या रात को खूब सोया जबकि वह सारी रात करवटें बदल

कर काटते थे। कविराज को वह यही बता देते थे। कविराज भी अपनी सफलता पर प्रसन्न थे।

एक दिन वकील साहब ने रतन से कहा, "शाम को घूम आया करो। अगर बीमार पड़ना चाहती हो तो मेरे अच्छे होने पर पड़ना।" वकील साहब को अचानक रमानाथ का विचार आया, "ज़रा पार्कों में घूम घाम कर देखो, शायद रमानाथ का पता चल जाए।"

रतन : "जालपा से मैंने वादा किया था लेकिन यहां आकर मैं भूल गई। मैं जाऊंगी तो आपकी चिंता लगी रहेगी।"

वकील साहब, "मैं तो अच्छा हो रहा हूं।"

जब रतन चली गई तो वकील साहब ने टीमल से कहा, "मुझे ज़रा उठा कर बिठा दो। मुझे तो इन कविराज की दवा से कुछ लाभ नहीं मालूम होता।"

टीमल : "यह तो मैं पहले ही कहने वाला था। बहू जी के डर के मारे न कहता था।"

वकील साहब : "जाकर किसी वकील को बुला लाओ, जल्द आना।"

इतने में मोटर हॉर्न सुनाई दिया। वकील साहब को बुलाने की बात टल गई।

वकील साहब ने पूछा, "कहां, कहां हो आई, रमानाथ का कुछ पता पता चला?"

रतन : "वो भला क्या मिलेंगे। दवा खाने का तो समय हो गया।"

वकील साहब : "लाओ खा लूं।"

रतन ने दवा निकाली और उन्हें उठा कर पिलाई। उस समय न जाने क्यों वह डर सी रही थी। बोली, "उन लोगों मैं से किसी को

तार दे दूं।"

वकील साहब, "नहीं नहीं, किसी को बुलाने की ज़रूरत नहीं। मैं चाहता हूं कि अपनी वसीयत लिखवा दूं।"

जैसे एक टंडी, तेज़ नुकीली चीज़ रतन के तलवों से निकल कर सर से निकल गई। जैसे नीचे से ज़मीन खिसक गई। ऊपर से आसमान उड़ गया। अपनों के लिए रतन उस समय बेचैन हो उठी। घर के लोग आ जाते तो दौड़ धूप करके किसी दूसरे डाक्टर को लाते, वह अकेली क्या करे? वसीयत की बात उसे फिर याद आ गई। यह विचार उनके मन में क्यों आया? क्या होने वाला है। महाराज ने खाने के लिए कहा तो उसने मना कर दिया। अपने कमरे में जाकर जालपा को पत्र लिखने लगी। पत्र लिख कर आई तो वकील साहब की सांस ज़ोरों से चल रही थी।

रात के तीन बजे वकील साहब के गले की घरघराहट सुन कर चौंक पड़ी। उनके सिरहाने बैठ गई। कई मिनट के बाद वकील साहब की सांस रुकी। सारा शरीर पसीने में भीगा हुआ था। बड़ी मुश्किल से बोले, "रतन अब विदा होने का समय आ गया। मेरे दोष..." कहना चाहते थे मगर मुंह से आवाज न निकली। दोनों हाथ जोड़ लिए।

रतन ने चीख कर महाराज को और टीमल को पुकारा। वह आए तो महाराज से कविराज को बुलाने के लिए कहे। उसने स्टोव जलाकर रुई के गालों से वकील साहब की छाती को सेंकना शुरू किया। पंद्रह मिनट सेंकने के बाद उनकी सांस कुछ रुकी। बोले, "रतन, क्या जानता था यह समय इतनी जल्दी आ जाएगा। मैंने तुम्हारे ऊपर बड़ा अत्याचार किया है। मुझे क्षमा कर देना।"

रतन ने टीमल से कहा, "जरा पानी गर्म कर दो।"

टीमल : "पानी गर्म क्या करोगी बहू जी, गऊदान करा दो। दो बूंद गंगा जल मुंह में डाल दो।"

रतन ने मरने वाले की छाती पर हाथ रखा। सीना गर्म था। वह अब भी सोच रही थी। कविराज आ जाते तो शायद उनकी दशा ठीक हो जाती। वकील साहब की आंखें खुली हुई थी। टीमल ने गंगा जल उनके मुंह में डाला और बोला, "बहू जी आपके मालिक को खाट से उतार दें, वह चले गए।" यह कह कर वह जमीन पर बैठ गया और रोने लगा। आज उसका तीस साल का साथ खत्म हो गया। फिर उसने पैर पकड़े और लाश को नीचे लिटा दिया। तब वहीं बैठ कर रतन रोने लगी।

उसी दिन शव काशी लाया गया। वकील साहब के एक भतीजे मालवा में रहते थे, उन्हें तार दे कर बुलाया गया। अंतिम संस्कार उनके हाथों हुआ।

जालपा सारा दिन रतन के पास बैठी रहती थी, रतन को न घरबार की सुध थी न खाने पीने की। कोई न कोई ऐसी बात याद आ जाती और वह रोने लगती। श्राद्ध के दिन उसने अपने सारे कपड़े और जेवर महाब्राह्मण को दे दिए। उन चीज़ों की अब उसे क्या जरूरत है और पति की छोटी सी छोटी चीज़ को उनकी निशानी समझ कर देखती भालती रहती थी।

वकील साहब के भतीजे का नाम था मणिभूषण, बड़ा ही मिलनसार और हंसमुख। शहर में जिन-जिन वकीलों और रईसों से वकील साहब की मित्रता थी उन सभी से मेलजोल बढ़ा लिया और रतन को पता भी न चला। उसने बैंक का लेन-देन अपने नाम से शुरू कर दिया। मकानों का किराया भी खुद वसूल करने लगा और गांव की तहसील भी।

टीमल ने रतन को उसकी खबर दी। उसी दिन मणिभूषण ने टीमल पर चोरी का आरोप लगा कर निकाल दिया। महाराज को भंग पिला कर ऐसा मिलाया कि वह उन्हीं का गुणगान करने लगा। महरी का मुंह पहले ही सी दिया गया था। रतन को तनिक भी खबर न थी।

एक दिन मणिभूषण ने रतन से कहा, "काकी मैं सोच रहा हूं आपको लेकर घर चला जाऊं। आपकी बहू सेवा करेगी। बाल-बच्चों में मन बहल जाएगा। आप कहें तो यह बंगला बेच दूं, अच्छे दाम उठेंगे। काका जी ने कोई वसीयत लिखी है? लाइए देखूं।"

रतन : "वसीयत तो नहीं लिखी और इसकी जरूरत भी क्या थी।

मणि :"गांव की आमदनी तीन हज़ार रुपए साल की है। आप जानती हें कि इतना ही वह साल भर में दान करते थे। इसलिए गांव की आमदनी दानपुण्य के कामों के लिए निश्चित करवा दी जाए। मकानों का किराया दो सौ रुपया महीना है, इससे उनके नाम पर पाठशाला खोल दी जाए और यह बंगला बेचकर रुपया बैंक में रख दिया जाए।"

रतन :"अभी जल्दी क्या है, कुछ रुपया बैंक में तो है।"

मणि :"बैंक में रुपए थे मगर महीनेभर से खर्च भी तो हो रहे हैं। हजार पांच सौ पड़े होंगे। मोटर को भी जल्दी निकाल देना चाहिए।" रतन चुपचाप बैठी हूं हां करती रही।

तेरहवी के बाद जालपा ने रतन के घर आना-जाना कम कर दिया। कई दिनों से मुंशी दयानाथ को बुखार था। उन्हें बुखार में छोड़कर कैसे जाती। मुंशी के कमरों में कई अखबारों के फाइल थे। जालपा का मन घबराने लगता तो उन फाइलों को उलट पलट कर देखने लगती। एक दिन एक पुराने अखबार में शतरंज का नक्शा देखा, उसके साथ उसका हल भी था। उसने सोचा, ऐसे लोग ज्यादा नहीं हो सकते जो यह नक्शा हल कर सके। उसने नक्शा अखबार में छपवाने और हल करने के लिए दस रुपए का ईनाम देने का निश्चय किया। हो सकता है कि हल करने वालों में उनका नाम हो,

इस तरह कुछ पता लग जाएगा। इसी उधेड़बुन में वह रतन के पास न जा सकी। रतन दिनभर उसकी राह देखती रही। शाम को उससे रहा न गया। पति के देहांत के बाद पहली बार घर से बाहर निकली। रतन आई तो उसने बताया, "मणि कहते हैं, यहां रहना अब बेकार है। बंगला बेच दिया जाए और हम लोग मालवा चले जाएं।"

जालपा : "यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई बहन, मुझे ऐसी हालत में छोड़कर चली जाओगी, मैं जाने न दूंगी।"

रतन, "मुझसे भी वहां न रहा जाएगा। मणि से कह दूंगी मुझे नहीं जाना।"

जालपा ने शतरंज के नक्शे पर अपने भाग्य का पांसा फेंकने का जो विचार किया था उसे बताया। रतन सुनते ही खुश हो गई, बोली, दस रुपए का ईनाम तो बहुत कम है पचास रुपए का कर दो। रुपए मैं देती हूं बाबूजी की दृष्टि पड़ गई तो वह उसे जरूर हल कर लेंगे और मुझे आशा है सबसे पहले उन्हीं का नाम आएगा। कुछ न होगा तो पता ही लग जाएगा। मैं कल रुपए लेकर आऊंगी, किसी मशहूर अखबार में भेजना।"

रमानाथ की चाय की दुकान खुल तो गई मगर सिर्फ रात को खुलती थी। रात को भी अधिकतर देवीदीन ही दुकान पर बैठता था लेकिन बिक्री अच्छी हो जाती थी। रुपए हाथ में आते ही रमा को सैर सपाटे, सिनेमा की याद आयी। जिन ज़रूरतों को वह अब तक टालता आता था, खरीदी जाने लगे। देवीदीन के लिए रेशमी चादर और जग्गू के लिए तेल की शीशियां, दोनों खुश हो गए। एक दिन मनोरमा थिएटर में आग़ा हश्र का नया ड्रामा आने वाला था। रमा को अपनी जगह एक दिन पहले सुरक्षित कराने की चिंता हुई। इस शौक़ ने पुलिस का भय दूर कर दिया। हुलिया बदलने के लिए पगड़ी बांधी

और दस बजे घर से निकला।

रमा सड़क पर आया तो उसकी हिम्मत बर्फ की तरह पिघलने लगी। कदम-कदम पर भय होता था, कोई पुलिसवाला न आ रहा हो। इसलिए वह सिर नीचे झुका कर चल रहा था। थोड़ी ही दूर चला होगा कि उसे तीन कांस्टेबिल पीछे से आते दिखाई दिए। उसने सड़क छोड़ दी और पटरी पर चलने लगा। उसने देखा कि कांस्टेबिलों ने भी सड़क छोड़कर वही पटरी ले ली। रमा का कलेजा धक-धक् करने लगा। कोई ऐसी गली भी नहीं जिसमें घुस जाए। अब तो वह बहुत पास आ गए। तीनों मेरी तरफ देखे-देख कर कुछ बातें कर रहे हैं। शायद मेरा हुलिया मिला रहे हैं। अब नहीं बच सकता। जब कांस्टेबल पास आ गए तो उसके चेहरे का रंग बदल गया। आंखों में डर झलकने लगा और वह कुछ इस तरह दूसरे आदमियों की आड़ तलाश करने लगा कि साधारण आदमी को भी उस पर संदेह होना स्वाभाविक था। फिर पुलिस वाले क्यों चूकते। एक ने ललकारा, "ओ जी ओ, पगड़ी ज़रा इधर आना, तुम्हारा क्या नाम है?"

रमा : "हीरा लाल।"

कांस्टेबल : "घर कहां है?"

रमा : "शाहजहांपुर।"

कांस्टेबल : "कौन मुहल्ला?"

रमा शाहजहांपुर न गया था, इतनी हिम्मत न हुई कि कोई फर्जी नाम बता दे, बोला, "तुम तो जैसे मेरा हुलिया लिख रहे हो।"

कांस्टेबल ने भभकी दी, "तुम्हारा हुलिया पहले ही लिखा हुआ है। नाम झूठ बताया, शहर का नाम गलत बताया, मुहल्ला पूछने लगा तो बगलें झाकने लगे। महीनों से तुम्हारी तलाश हो रही है, आज मिले हो चलो थाने।"

यह कहते हुए उसने रमा का हाथ पकड़ लिया। रमा ने हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "वारंट लाओ। तब मैं चलूंगा, मुझे कोई देहाती समझ लिया है?"

कांस्टेबल ने अपने साथी से कहा, "पकड़ लो जी इनके हाथ, वहीं थाने पर वारंट दिखाया जाएगा।" इतने में सैकड़ों आदमी जमा हो गए। देवीदीन अफीम लेकर लौट रहे थे। यह जमाव देखकर वह भी आ गया। देखा कि तीन कांस्टेबल रमानाथ को घसीटते हुए ले जा रहे हैं। आगे बढ़कर बोला, "हाय, हाय, जमादार ये क्या करते हो? पंडित जी तो हमारे मेहमान है?"

देवी : "चार महीने से कुछ ज्यादा हो गए होंगे। मुझे प्रयागसेन में मिल गए थे, मेरे साथ ही तो आए थे।"

एक कांस्टेबल ने आंखें निकाल कर कहा, "मालूम होता है तुम भी मिले हुए हो। इनका नाम क्यों नहीं बताते?"

देवी : "मुझसे रौब न जमाना जमादार, समझे।"

कांस्टेबिल : "बूढ़े बाबा तुम खामखाह बिगड़ रहे हो। इनका नाम क्यों नहीं बता देते?"

देवी : "हमलोग तो रमानाथ कहते हैं।"

कांस्टेबिल :"बोलो पंडित जी, क्या नाम है तुम्हारा? रमानाथ या हीरालाल?"

दूसरा कांस्टेबिल : "नाम है रमानाथ, बताते है हीरालाल, घर इलाहाबाद है। बताते हैं, शाहजहांपुर, जुर्म साबित हो गया।"

तमाशाइयों में कानाफूसी होने लगी। संदेह की बात है।

रमा को अब उनके साथ चुपचाप चले जाने में ही अपनी भलाई नज़र आई। थोड़ी देर में थाना आ गया। रमा ने एक बार पीछे मुड़कर देखा। देवीदीन का पता न था।

पुलिसस्टेशन के दफ्तर में उस समय बड़ी मेज़ के सामने चार आदमी बैठे हुए थे। दरोगा, नायब दरोगा, इंस्पेक्टर और डिप्टी सुपरिटेंडेंट। चारों एक डकैती के मुकदमें के बारे में बात कर रहे थे जिसमें उन्हें गवाह की ज़रूरत थी। कई उपाय सोचने के बाद इंसपेक्टर ने कहा, "एक सप्ताह का समय और लीजिए शायद कोई गवाह निकल आए।" यह फैसला करके तीन आदमी वहां से चले गए। इतने में एक सिपाही ने आकर कहा, "हुजूर, कुछ ईनाम दिलवाइए। एक मुलज़िम को संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया है। इलाहाबाद का रहने वाला है। रमानाथ नाम है। पहले नाम और जगह गलत बताता था। देवीदीन खटिक जो नुक्कड़ पर रहता है उसी के यहां ठहरा हुआ है। ज़रा डांट बताइएगा तो सब कुछ उगल देगा।"

इतने में रमानाथ भी दरोगा के सामने हाज़िर हो गया। दरोगा ने उसे सिर से पैर तक देखा और बोले, "अच्छा, यह इलाहाबाद का रमानाथ है। खूब मिले भाई। छः महीने से परेशान कर रहे हो।"

रमा : "महोदय, अब तो आपके हाथ में हूं जो मर्जी हो कीजिए। इलाहाबाद की म्युनिसिपलटी में मुलाज़िम था। मूर्खता कहिए या दुर्भाग्य, चुंगी के चार सौ रुपए मुझसे खर्च हो गए। मैं समय पर रुपए न जमा कर सका, शर्म के मारे घर वालों से कुछ न कह सका। नहीं तो इतने रुपए का इंतज़ाम हो जाना कुछ मुश्किल नहीं था। जब कुछ बस न चला तो वहां से भाग आया। इसमें एक शब्द भी गलत नहीं है।"

दरोगा : "मामला कुछ संगीन है। क्या जुआ खेलते थें या पत्नी के जेवर बनवाते थे?" इतने में देवीदीन आकर खड़ा हो गया। दरोगा ने पूछा, "क्या काम है यहां?"

देवी : "हजूर को सलाम करने चला आया। इन बेचारे पर

कृपा दृष्टि रखिएगा। बड़े सीधे आदमी हैं।

दरोगा : "सरकारी मुलज़िम को घर में छिपाते हो। इस पर सिफारिश करने आए हो। जानते हैं इन पर वारंट है सरकारी रुपए गबन किए हैं।"

देवी : "हजूर, भूलचूक तो आदमी ही से होती है।" यह कहते हुए पांच गिन्नी निकाल कर मेज पर रख दिया।

दरोगा : "रिश्वत देना चाहता है। कहो तो इसी इल्ज़ाम में भेज दूं।"

देवी : "भेज दीजिए, घरवाली लकड़ी कफन की चिंता से छूट जाएगी।"

दरोगा : "यहां धर्म कमाने नहीं आए हैं। तू अपनी गिन्नियां उठा ले। इसे बाहर निकाल दो जी।"

देवी : "आपका हुक्म है तो लीजिए जाता हूं। धक्के क्यों दिलवाइएगा।"

दरोगा ने कांस्टेबिल से कहा, "इन्हें हिरासत में रखो। मुंशी से कहो इनका बयान लिख लें।"

देवी फिर लौट कर आया और दरोगा से बोला "हूज़ूर दो घंटे की मोहलत न दीजिएगा?"

रमा रो पड़ा, बोला, "दादा अब तुम हैरान न हो। मेरे भाग्य में जो कुछ लिखा है, वह होने दो।"

देवी : "कैसी बात करते हो भैया। जब रुपयों पर बात आ गई तो देवीदीन पीछे हटनेवाला नहीं है। क्या सिर पर लादकर ले जाऊंगा।" फिर दरोगा से कहा, "अभी इन्हें हिरासत में भेजिए। मैं रुपए का बंदोबस्त करके थाड़ी देर में आता हूं।" अचानक दरोगा ने मेज़ की दराज से एक मिसिल निकाली, इधर-उधर से देखा और

प्यार से बोले, "अगर मैं कोई ऐसा उपाय बता दूं कि देवीदीन के रुपए बच जाएं और तुम भी। आपको एक मुकदमे में गवाही देनी पड़ेगी।"

रमा : "झूठी गवाही होगी।"

दरोगा : "नहीं, बिल्कुल सच्ची, बस यह समझ लो कि आदमी बन जाओगे। म्युनिसिपलटी के पंजे से तो छूट ही जाओगे शायद सरकार परवरिश भी करे। बोलो, अगर चलान हो गया तो पांच साल से कम सज़ा न होगी, मगर मैं मजबूर नहीं करता। तुम अपना भला-बुरा खुद समझते हो।" दरोगा ने डकैती की कहानी सुना डाली।

रमा : "तो मुझे मुखबिर बनना पड़ेगा और यह कहना पड़ेगा कि डकैती में सम्मिलित था। यह तो झूठी गवाही है।"

दरोगा : "मामला बिल्कुल सच्चा है। किसी बेगुनाह की जान खतरे में न आएगी। वही लोग सज़ा पाएंगे जिन्हें सज़ा मिलनी चाहिए। तब झूठ कहां रहा। सोच लीजिए। शाम तक जवाब दीजिएगा। यह मैं मानता हूं कि झूठ बोलना पड़ेगा।"

रमा के दिल में बात बैठ गई। अगर झूठ बोल कर वह अपनी मूर्खता को सुधार सके तो उससे अच्छी बात क्या हो सकती है। बोला, "मुझे यही डर है मेरी गवाही से निर्दोष न फंस जाएं।"

दरोगा : "इससे आप निश्चिंत रहें।"

दरोगा ने उसी समय मोटर मंगवाई और रमा को लेकर डिप्टी साहब के पास गया। पहले अकेले में डिप्टी साहब से खूब अलग बात बताई। उस आदमी की सूरत देखते ही भांप गया कि भागा हुआ है। तुरंत गिरफ्तार किया हुजूर, मुजरिम की आंखें पहचानता हूं। इलाहाबाद म्युनिसिपलटी में ग़बन करके भागा हुआ है। उस मामले में गवाही देने को तैयार है। आदमी पढ़ा लिखा, सूरत का शरीफ़ और बुद्धिमान है।

मगर माफीनामा लिए बिना उसे विश्वास न होगा।"

डिप्टी : "सरकार से इस बारे में बातचीत करनी होगी। आप फोन मिलाकर इलाहाबाद पुलिस से पूछिए कि इस आदमी पर क्या मुकदमा है।"

दरोगा ने इलाहाबाद बात की और बताया, "कहता है यहां इस नाम के किसी आदमी पर मुकदमा नहीं हैं, म्युनिसिपलटी में किसी ने रुपए ग़बन नहीं किए।"

डिप्टी : "यह क्या बात है भाई, कुछ समझ में नहीं आता। इसने नाम तो नहीं बदल दिया? आदमी बोलता है रुपया लेकर भागा और पुलिस बोलती है, कोई रुपया गबन नहीं किया। अच्छा म्युनिसिपलटी के दफ्तर से पूछिए?"

दरोगा ने म्युनिसिपलटी का नंबर मिलाया, पूछा, "आपके यहां रमानाथ नाम का कोई क्लर्क था?"

जवाब : "जी हां था?"

दरोगा : "वह कुछ रुपया ग़बन करके भागा है?"

जवाब : "नहीं, वह घर से निकल गया है, लेकिन गबन नहीं किया। क्या वह आपके यहां है?"

दरोगा : "जी हां, हमने उसे गिरफ्तार किया है। वह खुद कहता है, रुपए उसने खुद गबन किए।"

जवाब : "सुनिए, रमानाथ ने जोड़ लगाने में गलती की थी। डर कर भागा है।"

डिप्टी ने कहा : "अब क्या करना होगा? चिड़िया हाथ से निकल गई।"

दरोगा : "निकल कैसे गया हजूर। रमानाथ से यह बात कही ही क्यों जाए। उसे किसी आदमी से मिलने ही क्यों दिया जाए जो उसे

यह खबर दे सके। घर वाले ज़रूर उससे मिलने आएंगे, किसी से मिलने न दिया जाए।"

इधर तो यह सलाह हो रही थी, उधर देवीदीन एक घंटे में लौट कर थाने आया। कांस्टेबल ने कहा कि दरोगा जी तो साहब के पास गए हैं। देवीदीन ने घबराकर पूछा, "तो भैया को हिरासत में डाल दिया।"

कांस्टेबिल :"नहीं, उन्हें भी साथ ले गए।"

देवी : "पुलिस वालों की बात का कोई भरोसा नहीं। कहा था कि एक घंटे में रुपया ले कर आता हूं मगर इतना भी संतोष न हुआ।"

देवीदीन वहीं बैठ गया। एक घंटे बाद जग्गू भी आ गई। थोड़ी देर में दरोगा जी की मोटर आ पहुंची। इंस्पेक्टर साहब भी थे। रमा उन दोनो ंको देखते ही उनके पास आया और बोला, "तुम यहां देर से बैठे हो क्या? तुम कब आई अम्मा? कमरे में चलो?"

दरोगा ने देवी को छेड़ा, "कहो चौधरी लाए रुपए?"

देवी :"जब कह गया था कि मैं अभी थोड़ी देर में आता हूं तो आप को मेरी राह देखनी चाहिए, लीजिए अपने रुपए।"

दरोगा, "भाई अपने रुपए ले जाओ। अफसरों ने उसे छोड़ने से इंकार कर दिया। मेरे बस की बात नहीं।" दरोगा जी उसे छेड़ते रहे और हंसते रहे। जब देवीदीन धमकियां देने लगा तो रमा बोला, "दादा, दरोगा जी तुम्हें चिढ़ा रहे हैं। हम लोगों ने ऐसी सलाह की है कि मैं बिना कुछ लिए दिए ही रिहा हो जाऊंगा और मुझे कोई जगह भी मिल जाएगी। साहब ने पक्का वादा किया है। मुझे अब यहीं रहना होगा।"

देवी : "भैया क्या कहते हो? क्या पुलिस वालों के चकमें में आ गए। इसमें कोई न कोई चाल ज़रूर होगी।"

रमा : "और कोई बात नहीं मुझे एक मुकदमे में गवाही देनी पड़ेगी।"

देवी : "झूठा मुकदमा होगा।"

दरोगा : "वही डकैती वाला मामला है जिसमें कई ग़रीब आदमियों की जान गई थी। उन डाकुओं ने पूरे प्रदेश में हंगामा मचा रखा था। उनके डर के मारे कोई आदमी गवाही देने को राजी न होता।"

देवी : "अच्छा तो यह मुख़बिर बन गए। इसमें तो जो पुलिस सिखाएगी वही कहना होगा। मुझसे कोई मुखबिर बनने को कहता तो न बनता चाहे कोई लाख रुपए देता। दो चार मुलज़िमों के साथ दो चार निर्दोष तो होंगे।"

रमा : "मैंने खूब सोच लिया है दादा। पूरी मिसिल देख ली है उसमें कोई निर्दोष नहीं है।"

देवी : "होगा भाई, जान तो प्यारी होती है।" यह कहकर वह लौट पड़ा।

जालपा के पास अखबार के दफ्तर से पत्र आया तो उसे पढ़ कर वह रो पड़ी। आज छः महीने बाद खुशखबरी मिली। उसने सोचा वह कितने निर्दयी हैं। छः महीने से वहां बैठे हैं, एक पत्र भी नहीं लिखा।

इतने में रमेश बाबू ने आकर पुकारा, "बहूजी, तुम्हारे लिए खुशखबरी लाया हूं, मिठाई मंगवाओ।"

जालपा ने पान की तश्तरी रखी और बोली, "पहले वह खबर तो सुनाइए शायद आप जिस खबर को नई समझ रहे हैं वह पुरानी हो।"

रमेश ने बताया कि रमा कलकत्ते में है। जालपा बोली मुझे पहले ही मालूम हो चुका है। मुंशी जी यह सुनकर खुश हो गए। रमेश ने कहा कि एक पुलिस इनक्वाएरी थी। मैंने कह दिया उन पर किसी

तरह का आरोप नहीं है। जालपा ने भी पूरी कहानी सुनाई और अखबार का पत्र दिखाया। फिर रतन आ गई तो जालपा ने उसे बताया। रतन उसके गले से लिपट कर बोली, "तो तुम आज ही चली जाओ।"

जालपा : "हां, यही मैं भी सोच रही हूं। तुम चलोगी।"

रतन : "चलने को तो मैं तैयार हूं लेकिन अकेला घर किस पर छोड़ूं। मुझे मणिभूषण पर संदेह होने लगा है। बैंक में बीस हज़ार रुपए से कम न थे। कहता है कि क्रिया-कर्म में खर्च हो गए। हिसाब मांगती हूं तो आंखें दिखाता है। दफ्तर की कुंजी मांगती हूं तो टाल जाता है। बंगले के ग्राहक आ रहे हैं। मैं उधर जाऊं और इधर सबकुछ लेकर चलता बने तो शायद रुपए भी मुझे देखने को न मिले। गोपी को साथ लेकर तुम आज ही चली जाओ।"

देवी ने चाय की दुकान उसी दिन बंद कर दी और दिनभर अदालत के चक्कर लगाता फिरता था। तीन दिन रमा की गवाही बराबर होती रही। देवी घर पहुंचा तो अचानक दो आदमी आकर खड़े हो गए। उसने पूछा, "किसे खोजते हो?"

अधेड़ आदमी ने कहा, "मैं अखबार के दफ्तर से आया हूं। यह बाबू उन्हीं रमानाथ के भाई हैं जिन्हें शतरंज का ईनाम मिला था।"

देवी ने गोपी से कहा, "आओ बेटा बैठो कब आए घर से?"

गोपी एक खटिक की दुकान पर बैठते हुए झिझका। खड़ा-खड़ा बोला, "आज ही आया हूं, भाभी जी साथ हैं। धर्मशाला में ठहरा हुआ हूं।"

ज़रा देर में फिटन आ पहुंची। जालपा पहले तो साग भाजी की दुकान देखकर कुछ झिझकी मगर जग्गू का प्यार और सेवा सत्कार देख कर उसका संकोच दूर हो गया। जग्गू ने लोटे में पानी रखकर

कहा, "मुंह हाथ धो लो बेटी, भैया का हाल तो अभी तुम्हें मालूम न होगा।"

जालपा : "कुछ ठीक ठीक मालूम न हुआ। अख़बार के दफ्तर में इतना पता चला कि पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।"

देवी : "गिरफ्तार तो किया था, अब तो वे एक मामले में सरकारी गवाह हो गए हैं। अब उन पर कोई मुकदमा न चलेगा और नौकरी चाकरी भी मिल जाएगी।"

जालपा : "वहां तो उन पर कोई मुकदमा नहीं है।"

देवी : "सुना है कुछ रुपए पैसे का मामला था?"

जालपा : "वह तो कोई बात न थी। जैसे ही हम लोगों को पता चला कि उनसे कुछ सरकारी रक़म खर्च हो गई है उसी समय रुपए जमा कर दिए। ये घबरा कर चले आए और अपनी खबर तक न दी।"

देवी : "बार-बार समझाया कि घर चिट्ठी भेज दो मगर मारे शर्म के लिखते ही न थे। इसी धोखे में रहे कि वहां उन पर मुकदमा चल रहा होगा। जानते तो सरकारी गवाह क्यों बनते?"

जालपा : "क्या यहां भी कोई बात हुई थी?"

देवी : "कोई बात भी नहीं। प्रयाग से वह मेरे साथ ही यहां आए थे। बाहर निकलते ही न थे। एक बार दिन में निकले तो एक सिपाही को अपनी ओर आते देखकर डर गए और भाग खड़े हुए। सिपाही ने संदेह में गिरफ्तार कर लिया। मैं भी थाने पहुंचा। दरोगा पहले तो रिश्वत मांगते थे मगर जब रुपए ले कर पहुंचा तो न जाने अफसरों ने उनसे क्या बातचीत की कि सरकारी गवाह बन गए।"

जालपा : "क्या उनका बयान हो गया?"

देवी : "हां, तीन दिन बराबर होता रहा।"

जालपा : "उनसे मेरी मुलाकात तो हो जाएगी?"

देवी : "आजकल उनसे कोई भी मिलने नहीं पाता, कड़ा पहरा रहता है।"

जालपा सोचती रही कि रमा को इस दल-दल से कैसे निकाले। अपराधियों में न जाने कौन दोषी है कौन निर्दोष। अनिर्दोषों का खून किसकी गर्दन पर होगा। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को खतरे में डालना कितने शर्म की बात है, रमा ने इस बात को क्यों मान लिया? अगर मुकदमा चलने का भय भी था तो साल दो साल की कैद के सिवा और क्या होता? अब मालूम भी हो जाए कि म्युनिसिपलटी कुछ नहीं कर सकती तो क्या हो सकता है? उनकी गवाही तो हो गई। उन्हें अगर मालूम हो जाए कि उन पर कोई मुकदमा नहीं चलेगा तो शायद वह खुद ही अपना बयान बदल दे। मगर यह मामला उनके कानों तक कैसे पहुंचे? उसने देवीदीन से पूछा, "क्यों दादा पहरे वालों को दस पांच रुपए देने से तो शायद पत्र पहुंच जाए या कोई उस बाग़ में छुपकर बैठ जाए और उन्हें अकेले देख कर पत्र फेंक दे।"

देवी : "हां, यह हो सकता है, लेकिन अकेले मिलें तब तो।"

अंधेरा हुआ तो जालपा देवीदीन के साथ बंगला देखने गई। एक पत्र लिखकर जेब में रख लिया। बंगले के पास पहुंच कर जालपा ने देखा बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। फाटक पर ताला पड़ा हुआ था। दोनों बाग़ में चले गए। बाग़ में जो रखवाला था देवी ने उसे पहचान लिया। उससे मालूम हुआ कि आज सब चले गए। सुनते हैं पंद्रह बीस दिन में आएंगे। मौका देखने गए हैं जहां वारदात हुई थी।

एक महीना बीत गया। जालपा कई बार रमा के बंगले तक आती। एक दिन शाम को वह खिड़की के सामने आई तो सड़क पर मोटरों की लाइन दिखाई दी। छः मोटरें थीं। उनमें पुलिस के अफसर

बैठे हुए थे। आखिर मोटर पर नज़र पड़ते ही वह खिड़की से सीढ़ी तक दौड़ती हुई गई जैसे मोटरों को रोक लेना चाहती हो लेकिन वह फिर पलट कर खिड़की के सामने आ गई कि मेरे नीचे पहुंचते-पहुंचते मोटरें निकल जाएंगी। रमा बिल्कुल सामने आ गया था। उसकी आंखें खिड़की की तरफ लगी हुई थीं। जालपा ने इशारे से कहना चाहा लेकिन शर्म ने रोक लिया। देवीदीन की आवाज भी सुनाई दी मगर मोटर रुकी नहीं।

जालपा सीढ़ी पर आ गई तो देवीदीन ने कहा, ''भैया आ गए। वह मोटर जा रही है। उन्होंने राम-राम की। मैंने कुशल पूछा। दोनों हाथों से दिलासा देते हुए चले गए।

जालपा : "तब तो जो कुछ करना है आज ही कर लेना चाहिए।

देवीदीन चुप रहा तो जालपा ने कहा, "क्या तुम्हे संदेह है कि वह अपना बयान बदलने पर सहमत नहीं होगें?

देवी : ''हां बहूजी, सच पूछो तो है भी जोखम! अगर वह बयान बदल भी दें तो पुलिस के पंजे से छूट नहीं सकते। कोई दूसरा आरोप लगाकर उन पर मुकदमा चला देगी।''

जालपा : ''मैं नहीं चाहती कि वह दूसरों को दग़ा देकर मुखबिर बन जाएं। यह मामला तो बिल्कुल झूठा है। अगर उन्होंने अपना बयान बदला तो मैं अदालत में जाकर सारी पोल खोल दूंगी। परिणाम कुछ भी हो। वह मेरी सूरत न देखें यह मुझे स्वीकार है मगर यह नही हो सकता कि इतने निर्दोषों का खून उनकी गर्दन पर हो।''

वह रमानाथ जो पुलिस के डर से बाहर न निकलता था, जो देवीदीन के घर में चोरों की तरह पड़ा था, आज दो महीनों से ठाठ से रह रहा है। सेवा करने के लिए चौकीदारों की फौज, खाना पकाने के लिए कश्मीरी रसोइया। उसके मुंह से बात निकली नहीं कि पूरी

हुई। पुलिस को मालूम था कि सेशन जज की अदालत में यह घर की खेती न होगी। इसलिए पुलिस एक बार रमा को उन जगहों पर ले गई जहां घटनाएं हुई थे। एक जमींदार के बंगले में रहने का इंतज़ाम था। दिनभर लोग शिकार खेलते। रात को ग्रामोफोन सुनते, ताश खेलते। ऐसा लगता था कि कोई राजकुमार शिकार खेलने आया है। रमा को विचार आया कि काश जालपा भी यहां होती। वह इस विचार से खुश था कि मुकदमा ख़त्म होते ही उसे कोई पद मिल जाएगा, तब वह जाकर जालपा को मना लाएगा। एक महीना देहात की सैर करने के बाद रमा वापस आ रहा था। रास्ता देवीदीन के घर के सामने था। अपना कमरा देखा तो खिड़की के सामने कोई खड़ा था। जब चेहरा साफ़ नजर आया तो रमा चौंक पड़ा। यह तो जालपा है। मगर नहीं, जालपा यहां कैसे आएगी। मेरा पता ठिकाना उसे कहां मालूम। उसने मोटर रोकने के लिए कहा। नायब ने मोटर धीमी कर ली लेकिन फिर सोच कर उसे आगे बढ़ा दिया।

रमा : "आप तो मुझे कैदी समझ रहे हैं।"

नायब : "आप तो जानते हैं, डिप्टी साहब कितना आपे से बाहर हो जाते हैं।"

बंगले पर पहुंच कर रमा सोचने लगा कि जालपा से कैसे मिलूं? वह जालपा ही थी। दिल में एक तूफान उठा हुआ था। क्या करे, कैसे जाए? थोड़ी देर में वह बाहर निकला। फाटक पर चौकीदार खड़ा था, उसे चौकीदार पर गुस्सा आया। ऐसे डटे खड़े हैं जैसे किसी किले के दरवाज़े की रक्षा कर रहे हैं। अचानक उसे ऐसा मालूम हुआ कि तार के पेड़ों की आड़ में कोई है और उसकी तरफ ताक रहा है, इशारे से अपनी तरफ बुला रहा है। रमानाथ का दिल धड़कने लगा। कहीं किसी ने उसकी जान लेने की तो नहीं ठानी? उसी समय एक मोटर

सड़क से निकली। उसकी रोशनी में रमा ने देखा वह अंधेरी छाया किसी औरत की है और वह उसकी तरफ आ रही है। यहां तक कि तार के पास आ कर उसने कोई चीज़ रमा की ओर फेंकी। रमा चीख मार कर पीछे हट गया, मगर देखा तो एक लिफाफ़ा था। रमा ने लपक कर लिफ़ाफ़ा उठा लिया और कमरे में आकर दोनों दरवाजे बंद कर लिए, लिफाफा खोला और पत्र पढ़ा। पत्र पढ़ने के बाद वह बोझ जिसने छः महीने से उसकी आत्मा को दबा कर रखा था, वह सारी कमज़ोरी और शर्म जैसे छू मंतर हो गई। उसने सोचा, अभी चल कर दरोगा से कह दूं। मेरा उस मुकदमे से कोई संबंध नहीं, लेकिन फिर विचार आया कि बयान तो अब हो ही चुका, जितनी बदनामी होनी थी हो ही चुकी, इससे फायदा क्यों न उठाऊं। मगर इन ज़ालिमों ने मुझे कैसा धोखा दिया है। कह दूंगा, अगर आज मुझे कोई अच्छी जगह मिल जाएगी तो मैं गवाही दूंगा लेकिन लूंगा इन्स्पेक्टरी और कल दस बजे तक नौकरी का परवाना आ जाए। वह चला लेकिन फिर रुक गया। जालपा से मिलने के लिए जान तड़प रही थी। दस बज गए थे। रमानाथ ने बत्ती बुझा दी और बरामदे में आकर ज़ोर से किवाड़ बंद कर दिए, जिससे सिपाही को मालूम हो कि अंदर से किवाड़ बंद करके सो रहे हैं। फिर धीरे से उतरा और कांटेदार बाड़ के पास आ कर तारों के बीच में से हो कर निकल जाने का निश्चय किया। सर और कंधे को तार के बीच में डाला और कपड़ों की परवाह न करते हुए निकल गया। सारे कपड़े फट गए, पीठ में खरोंचे लगे और वह देवीदीन की घर की तरफ चला। उसे ज़रा भी डर न था। पुलिस मेरा कर ही क्या सकती है। मैं कैदी नहीं हूं।

वह घर पहुंचा तो देवीदीन उसे देख कर बोला, "बहू का पत्र मिल गया था?"

रमा : "हां, उसी समय मिल गया था। क्या तुमने घर में कोई पत्र लिखा था?"

देवी : "मैने कोई पत्र नहीं लिखा। जब वह आई तो मुझे खुद अचंभा हुआ कि बिना जाने बूझे कैसे आ गई। फिर बहू ने बताया कि वह शतरंजवाला नक्शा और ईनाम उन्होंने प्रयाग से भेजा था।" यह कह कर उसने रमा का हाथ पकड़ लिया और बोला, "चलो अब सरकार में तुम्हारी पेशी होगी। बहुत भागे थे। बिना वारंट के पकड़े गए।"

रमा कुछ संकोच करता, कुछ झेंपता, कुछ डरता सीढ़ी पर चढ़ा। जालपा उसे देखते ही दो कदम पीछे हट गई। देवी दीन वहां न होता तो वह दो कदम आगे बढ़ी होती। आज उसकी इच्छा पूरी हुई। सारी रात बातों में बीत गई। दोनों ही को अपनी-अपनी छः महीनों की कहानी कहनी थी। जालपा ने अपने दुखों की चर्चा भी न की। वह डरती थी, उन्हें दुख होगा लेकिन रमा को उसे रुलाने में मज़ा आ रहा था। वह क्यों भागा, किसलिए भागा, यह सारा किस्सा उसने दुखभरी आवाज़ में सुनाया और अपनी कठिनाइयों को राई का पर्वत बनाकर दिखाया। जालपा ने सिसक कर कहा, "तुमने ये सारी कठिनाइयां झेलीं और मुझको एक पत्र भी न लिखा। क्यों हमसे नाता ही क्या था? मुंह देखे का प्रेम था?"

रमा : "यह बात नहीं जालपा, "मैंने तो सोच लिया था, जब तक खूब रुपए न कमा लूंगा एक शब्द भी न लिखूंगा।"

जालपा, "ठीक ही था। रुपए आदमी से ज़्यादा प्यारे होते हैं। हम तो रुपए के यार हैं। तुम चाहे चोरी करो, डाका डालो, झूठी गवाहियां दो, किसी भी तरह रुपए लाओ। तुमने मुझे कितना ठीक समझा है वाह? जिस समय मुझे मालूम हुआ कि तुम पुलिस के गवाह बन गए

हो, मुझे इतना दुख हुआ कि मैं तुरंत देवी के साथ बंगले तक गई। उस दिन तुम बाहर चले गए थे। तुम्हें बयान वापस लेना पड़ेगा।"

रमा : "जब से तुम्हारा पत्र मिला, मैं यही सोच रहा हूं, लेकिन बचाव का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। एक बात कह कर मुकर जाने की हिम्मत मुझमें नहीं है, फिर भी कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, आराम से जीवन व्यतीत होगा।" जालपा ने कोई जवाब न दिया। वह सोच रही थी, इन्सान कितना स्वार्थी होता है।

रमा : "और कुछ मेरी गवाही पर ही तो सारा फैसला नहीं हुआ जाता। मैं बदल भी जाऊं तो पुलिस कोई दूसरा गवाह खड़ा कर देगी। अपराधियों की जान तो किसी तरह नहीं बच सकती। हां, मैं मुफ्त में मारा जाऊंगा।"

जालपा : "कैसी बेशर्मी की बातें करते हो जी। क्या तुम इतने गए गुज़रे हो कि तुम्हें अपनी रोटियों के लिए दूसरे का गला काटना पड़े। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती। मुझे मज़दूरी करना भूखों मर जाना मंजूर है लेकिन मैं किसी का बुरा चाह कर स्वर्ग का राज भी नहीं ले सकती।"

रमा : "तो क्या तुम ये चाहती हो कि मैं यहां कुलीगीरी करूं।"

जालपा : "नहीं, मैं यह नहीं चाहती। लेकिन अगर कुलीगिरी भी करनी पड़े तो वह कहीं खून से चुपड़ी रोटियां खाने से बढ़कर है। अगर तुम्हें यह पाप की खेती करनी है तो मुझे आज ही यहां से भेज दो। मैं मेहनत मज़दूरी करके अपना पेट पाल लूंगी।"

रमा :"चाहता तो मैं भी हूं कि किसी तरह इससे छुटकारा मिले।"

जालपा : "तो फिर करते क्यों नहीं? अगर तुम्हें कहते शर्म आती है तो मैं तुम्हारे साथ चलूंगी और तुम्हारे सुपरिंटेंडेंट साहब से सारा

माजरा कह सुनाऊंगी।"

रमा : "नहीं, जालपा मैं उन लोगों को समझा लूंगा।"

फिर और बातें होने लगी। जीवन के कार्यक्रम तय होने लगे। जालपा ने कहा कि वहां रतन से थोड़ी ज़मीन ले लेंगे और खेती बाड़ी करेंगे। रमा ने कहा कि इससे कही अच्छा है कि यहां रह कर वह घर की देखभाल, भाईयों की निगरानी और मां बाप की सेवा करे।

रमा मुंह अंधेरे बंगले पहुंचा। किसी को संदेह न हुआ। सुबह को दारोग़ा के पास पहुंचा। त्योरियां चढ़ी देखकर दरोगा ने पूछा, "क्या बात है?"

रमा : "बात यही है कि मैं इस मामले में अब गवाही नहीं दूंगा। आप लोगों ने मुझे धोखा दिया और वारंट की धमकी दे कर मुझे गवाही देने पर मजबूर किया। मुझे मालूम हो गया है कि मेरे पर किसी प्रकार का आरोप नहीं है। आज जज साहब से साफ कह दूंगा।"

दरोगा :"आपने खुद ग़बन करने की बात बताई थी।"

रमा : "वह जोड़ की गलती थी, गबन न था।"

दरोगा : 'यह आपको कैसे पता चला?"

रमा : "इससे आपको कोई मतलब नहीं। मैं गवाही नहीं दूंगा। जिन तारीखों की यह घटना है उन तारीखों में मैं इलाहाबाद में था। म्युनिसिपल आफिस में मेरी हाजिरी रजिस्टर में लगी हुई है।"

दरोगा :"अच्छा साहब पुलिस ने आपको धोखा दिया लेकिन उसका ईनाम तो दे रही है। कोई अच्छी जगह मिल जाएगी, मोटर पर बैठ सैर करोगे।"

रमा : "ऐसी तरक्की आप ही को मुबारक हो।"

इतने में डिप्टी और इंस्पेक्टर आ पहुंचे। जब उन दोनों को पता

चला कि रमा गवाही नहीं देना चाहता तो कुछ देर सन्नाटा रहा। किसी को कोई बात न सूझी। फिर डिप्टी उसे धमकियां देने लगा। हम आपको छोड़ेंगे नहीं आपको वही गवाही देनी होगी जो पहले दे चुके हैं। तुम पर विद्रोह का केस चल सकता है जिसमें सात साल के लिए जेल जा सकते हो और रमा डर गया। अपनी कमज़ोरी पर उसे इतना दुख हुआ कि रो पड़ा।

बोला : "आप लोग यही चाहते हैं तो यही सही। भेज दीजिए जेल। मर ही तो जाऊंगा। गला तो छूट जाएगा?"

डिप्टी : "हम तुम्हारे साथ हर तरह के व्यवहार को तैयार हैं लेकिन जब तुम हमारी जड़ खोदोगे तो हम भी अपनी कार्रवाई करेगें।"

उसी समय सरकारी एडवोकेट व बैरिस्टर मोटर से उतरे।

रतन अपने पत्रों में जालपा को दिलासा देती रहती थी मगर अपने बारे में कुछ न लिखती थी। पडित जी के मरने के बाद रतन दुनिया से इतनी निराश हो गई कि उसे किसी बात की सुध-बुध न रही। उसने सब कुछ मणिभूषण पर छोड़ दिया और उस मणिभूषण ने ऐसा स्वांग भरा कि सीधी-सादी रतन को उसके कारनामों की भनक तक न मिली। एक दिन आकर उसने जब रतन को बंगला खाली करने को कहा तो रतन बोली, "मैं अभी यहीं रहना चाहती हूं। मेरी आज्ञा के बिना तुम कोई चीज़ बेच नहीं सकते।"

मणिभूषण :"आपका इस घर पर और चाचा की ज़ायदाद पर कोई अधिकार नहीं है। आप मुझ पर मात्र गुज़ारे का दावा कर सकती हैं। अगर चाचा जी अपनी जायदाद आपको देना चाहते तो कोई वसीयत जरूर छोड़ते। आज आपको बंगला खाली करना होगा। आपकी मर्जी हो मेरे साथ चलें या यहीं रहे। यहां रहने के लिए आपको दस-पंद्रह रुपए का मकान अधिक होगा। गुजारे के लिए

पचास रुपए महीने का इंतज़ाम मैंने कर दिया है।"

रतन ने कोई जवाब न दिया। फिर मोटर मंगवाई और सारा दिन वकीलों के पास दौड़ती रही। जिन वकीलों से पंडित जी का याराना था उन्हें यह सुनकर बहुत दुख हुआ और वसीयत न लिखे जाने पर आश्चर्य करते रहे। अब इसके लिए मात्र एक रास्ता था, वह यह सबित करना कि वकील साहब और उनके भाई अलग हो गए थे और यह सिद्ध करना कुछ मुश्किल न था। लेकिन फिर उसने सोचा वह क्यो ग़ैरों के सामने हाथ फैलाए। क्या वह कपड़ा नहीं सी सकती, कोई छोटी-मोटी दुकान नहीं रख सकती? पढ़ा भी सकती है। शाम को दरवाज़े पर कई ठेले वाले आ गए। मणिभूषण ने कहा, "मैंने एक मकान ले लिया है, आप जो चीज़ कहें लदवाकर भेजवा दूं।"

रतन : "मैं इस घर का एक तिनका भी अपने साथ न ले जाऊंगी। दुनिया में हज़ारों विधवा औरतें हैं, मैं उनमें से एक हूं। मैं भी उनकी तरह मज़दूरी करूंगी।"

यह कहती हुई रतन घर से निकली। मणिभूषण ने उसका रास्ता रोक कर कहा कि अगर आप की मर्ज़ी न हो तो मैं अभी बंगला न बेचूं। लेकिन रतन के कदम उठ चुके थे और वह तेजी से जालपा के घर जा रही थी।

ठीक दस बजे जालपा और देवीदीन कचहरी पहुंच गए थे। ऊपर की गैलरी भरी हुई थी और हज़ारों आदमी सामने के मैदान में खड़े थे। सारे अपराधी कटघरे के पास जमीन पर बैठे हुए थे। ग्यारह बजे मुकदमे की पेशी हुई। पहले पुलिस की गवाही हुई। कोई तीन बजे रमानाथ को बुलाया गया। रमा सिर झुकाए खड़ा था। जालपा चाहती थी कि एक बार रमा की आंखें उठ जाती, लेकिन वह सहमा हुआ, घबराया हुआ इस तरह खड़ा था जैसे किसी ने बांध रखा हो।

रमा का बयान शुरू हुआ, वही, पुलिस की सिखाई हुई गवाही थी। अदालत में सन्नाटा छा गया। जालपा ने कई बार खांसा लेकिन रमा का सिर और भी झुक गया, आवाज़ कुछ और धीमी हो गई।

गैलरी में बैठी औरतें रमा को बुरा-भला कहने लगी। एक-एक शब्द चिंगारी की तरह उसके दिल पर लगता था। दिल में उबाल आता था कि उठकर कह दूं कि यह बिल्कुल झूठ बोल रहा है। जालपा वहां न ठहर सकी। उठकर बाहर चली आई। देवीदीन भी उसके पीछे-पीछे आ गया। देवीदीन ने उसे तसल्ली देने के लिए कहा कि पुलिस ने जिसे एक बार बूटी सूंघा दी, उस पर किसी दूसरी बात का असर नहीं हो सकता। थोड़ी देर बाद जालपा बोली, "दादा मेरा मन करता है आज जज साहब से मिलकर शुरू से जो हुआ कह सुनाऊं। मैं प्रमाण दूंगी तब तो मानेंगे।"

देवी : "चलो पूछते हैं, लेकिन जोखिम की बात है। भैया पर कहीं झूठी गवाही का आरोप लगाकर सज़ा कर दें तो?"

जालपा : "तो कुछ नहीं जो जैसा करे वैसा भोगे।"

देवी : "जज साहब पुलिस कमिश्नर को बुला कर कहंगे। कमिश्नर सोचेगा कि यही औरत खेल बिगाड़ रही है और जब गवाह बदलने लगता है तो पुलिस वाले उसके साथ बुरा व्यवहार करते हैं।"

जालपा को अपनी गिरफ्तारी का भय न था लेकिन यह डर ज़रूर था कि रमा पर कहीं मुसीबत न आ जाए। इस डर से उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। बोली, "मैं सोचती हूं घर चली जाऊंगी, यहां रह कर अब क्या करूंगी।"

रास्ते में दोनों चुप रहे। जालपा सोच रही थी, क्या एक बार फिर रमा से मुलाकात होगी। वह उससे कहना चाहती थी, "तुम्हारी दौलत और तुम्हारा पद तुम्हें मुबारक हो जिसके लिए तुमने अपनी आत्मा बेच दी।"

एक महीना बीत गया। जालपा रमा की ओर से बेपरवा हो गई थी। कई बार सोचा कि सारी घटना किसी अखबार में छपवा दे।

लेकिन दिल की गहराइयों में छुपी हुई कोई शक्ति उसकी ज़बान बंद कर देती थी।

रमा पर उसे अब गुस्सा न आता था, दया भी न आती थी। उसके मर जाने की खबर पाकर शायद उसकी आंखों में आंसू न आते। उसने रमा को कई बार मकान के सामने से जाते देखा। उसकी आंखें किसी को तलाश करती हूई मालूम होती थी। उन आंखों में शर्म थी लेकिन जालपा ने कभी उसकी तरफ आंख न उठाई। रोज़ाना अखबार वाले की आवाज पर कान लगाए बैठी रहती थी। एक दिन देवीदीन अखबार लाया और वह मुकदमे का निर्णय पढ़ने लगी। निर्णय क्या था एक काल्पनिक कहानी थी जिसका हीरो रमा था। देवीदीन के पूछने पर उसने बताया, "कोई नहीं छूटा। एक को फांसी की सज़ा हुई। पांच को दस वर्ष की और आठ को पांच-पांच साल की। फांसी उसी दिनेश को होगी। उन बेचारे के बाल-बच्चों का न जाने क्या हाल होगा?"

देवी : "मैंने सब का पता लगा लिया है। औरों का तो अभी तक ब्याह ही नहीं हुआ। सिर्फ दिनेश के दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, बूढ़ी मां है और पत्नी है। यहां किसी स्कूल में मास्टर था।"

जालपा : "मैं उसके घर चलूंगी।"

शाम को एक मोटर आई और रमा ने उतर कर जग्गू से पूछा, "क्यों दादी, सब ठीक-ठाक तो है? दादा कहां हैं?" रमा ने सोने की चार चूड़ियां जग्गू के पैरों में रख दीं। "यह तुम्हारे लिए लाया हूं। दादी पहनो, ढ़ीली तो नहीं हैं।" जग्गू ने चूड़ियां उठा कर ज़मीन पर पटक दीं और बोली, "भगवान की दया से बहुत सी चूड़ियां पहन चुकी हूं लेकिन जो खाया पहना अपनी मेहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं दबाया। यह पाप की कमाई ले के तुम बहू को देने आए

हो। अपना भला चाहते हो तो लौट जाओ। तुम आज पुलिस के हाथों ज़ख्मी हो कर आए होते तो बहू तुम्हारे पांव धो-धो कर पीती। अगर तुम मेरे लड़के होते तो मैं तुम्हें जहर दे देती।"

रमा : "दादी मैंने बुराई की है और इसके लिए मरते दम तक शर्मिंदा रहूंगा। लेकिन तुम मुझे जितना कमीना समझ रही हो, उतना कमीना नहीं हूं। अगर तुम्हें पता होता कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी-कैसी ज्यादतियां की तो तुम मुझसे इतनी नाराज़ न होती।"

रमा की आवाज सुनकर जालपा नीचे आई और बोली, "अगर सख्ती से इतना दब सकते हो तो तुम्हें अपने आप को मर्द कहने का अधिकार नहीं है। क्यों नहीं सीना खोल कर खड़े हो गए कि गोली का निशान बना लो मगर झूठ नहीं बोलूंगा। आखिर इसका क्या ईनाम मिला?"

रमा : "अभी तो वायदे ही वादे हैं।"

जालपा : "यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी होगी। जाओ ज़िंदगी के मज़े लूटो। मेरा तुमसे कोई रिश्ता नहीं है। मैंने समझ लिया कि तुम मर गए। तुम भी समझ लो कि मैं मर गई।"

रमा : "तुम माफ न करोगी?" वह सिर झुकाए ख़डा रहा। फिर नीचे जाकर जग्गू से बोला, "दादा से कह देना मुझ से ज़रा देर के लिए मिल लें। यहां अब नहीं आऊंगा।"

रमा मोटर पर चला तो उसे कुछ सूझता न था। उसे जालपा पर, जग्गू पर गुस्सा नहीं आ रहा था। गुस्सा आ रहा था अपनी कमज़ोरी पर, अपनी बेशर्मी और बेइज्ज़ती पर। वह पुलिस वालों के चकमे में आ गया। अफसरों ने बड़ी-बड़ी उम्मीदें बंधाकर उसे बहला रखा था। आज वह एक जड़ाऊ हार जेब में रखे जालपा को अपनी सफलता का शुभ समाचार देने गया था। जानता था, जालपा पहले कुछ नाक-भौं

सिकोड़ेगी मगर यह हार देख कर खुश हो जाएगी। लेकिन जालपा ने ठुकरा दिया। उसने सोचा कि इसी समय जज के पास जाए और सारी घटना बता दे। क्या जज अपना निर्णय बदल नहीं सकता? अगर वह जानता कि जालपा इतनी नाराज़ हो जाएगी तो अपना बयान ज़रूर बदल देता। उसने मोटर रोकी और इधर-उधर देखने लगा। एक चौकीदार नज़र आया। रमा ने उससे जज के बंगले का पता पूछा। चौकीदार ने बताया कि वो चौरंगी की तरफ रहते हैं। वह चौरंगी पहुंचा तो दरोगा जी मिल गए। बड़ी मुश्किल से उनसे पीछा छुड़ाया और मोटर से उतर कर तेज़ी से आगे बढ़ गया। कुछ दूर जाकर एक मोड़ पर घूम गया और इधर-उधर बंगलों पर लगी नेम प्लेट पढ़ता चला गया। अचानक जज का नाम देखकर रुक गया। अंदर जाने की हिम्मत न पड़ी। विचार आया, अगर जज ने पूछा तुमने झूठी गवाही क्यों दी तो क्या जवाब दूंगा। अगर वह पूछे कि तुमने सिर्फ दो साल की सज़ा से बचने के लिए इतने निर्दोषों का खून सिर पर ले लिया, तो इसका मेरे पास क्या जवाब है?

वह बंगले पर लौट आया।

रमा आधी रात के बाद सोया तो नौ बजे तक नींद न खुली। वह सपने देख रहा था, दिनेश को फांसी हो रही है। इसी समय दरोगा ने आकर कहा, "आज तो आप खूब सोए बाबू साहब।"

रमा : "उस मुकदमें की अपील तो हाईकोर्ट में होगी।"

दरोगा : "अपील क्या होगी। नियम का प्रबंधन होगा। आपने मुकदमा तो इतना मज़बूत कर दिया है कि अब वह किसी के हिलाए नहीं हिल सकता।"

फिर डिप्टी और इंस्पेक्टर आ गए। डिप्टी ने एक लिफ़ाफ़ा रमा की तरफ बढ़ाया, "कमिश्नर साहब आपसे बहुत खुश हैं। उन्होंने

आपको यह सिफ़ारिशी पत्र दिया है। बस यह समझ लीजिए कि आपका भाग्य खुल गया।"

रमा ने लिफ़ाफ़ा खोल कर देखा और फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। तीनों आदमी आश्चर्य से उसका मुंह देखने लगे। दरोगा ने कहा कि आपने मूर्खता की है। इंस्पेक्टर बोला कि कमिश्नर साहब को मालूम होगा तो बहुत नाराज़ होंगे।

रमा : "मुझे इस पत्र की ज़रूरत नहीं, मैं आज यहां से चला जाऊंगा।"

डिप्टी : "कमिश्नर साहब का हुक्म है जब तक हाईकोर्ट का फैसला न हो जाए, आप कहीं नहीं जा सकते।"

रमा : "मैं किसी का गुलाम नहीं हूं।"

तीनों फिर उसे धमकियां देने लगे। इंस्पेक्टर ने कहा कि इनकी पत्नी मजबूर कर रही है तो उसे ठीक करना होगा। डिप्टी ने कहा कि उस खटिक से भी मुचलका लेना चाहिए। यह सब सुनकर रमानाथ के सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई। वह खुद तो दो-चार साल की सज़ा के लिए तैयार था लेकिन जालपा को मुसीबत में डालने के लिए नहीं सोच सकता था। उसने कहा, "आखिर आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं?"

दरोगा : "बस हम इतना चाहते हैं कि आप हमारे मेहमान बने रहें और हाईकोर्ट से फैसला हो जाने के बाद खुशी-खुशी चले जाएं। इसके बाद हम आप की रक्षा के ज़िम्मेदार न होंगे।"

एक महीना और निकल गया। हाईकोर्ट में मुकदमें क़ी तारीख निश्चित हो गई। रमा फिर अफसरों के इशारों पर नाचता रहा। वह अब पहले से ज्यादा शराब पीता। उसके मनोरंजन के लिए पुलिस ने ज़ोहरा नाम की एक तवायफ़ की सेवाएं लीं। उसने अपनी बातों से

रमानाथ को रिझा लिया। उसकी सादगी ने ज़ोहरा को भी उसकी ओर आकर्षित किया। एक दिन उसने ज़ोहरा से कहा कि तुम मुझ पर इतनी मेहरबान हो कि मैं डरता हूं, तुम्हारे प्रेम में गिरफ्तार न हो जाऊं।

जब ज़ोहरा वहां से चली तो उसने दरोगा से कहा, "आज तो महाशय खूब मज़े में आ गए। खुदा ने चाहा तो चार दिन में बीवी का नाम भी न लेंगे।"

दरोगा ने खुश हो कर कहा, "मज़ा तो जब है कि उसकी पत्नी निराश हो कर चली जाए।"

ज़ोहरा हर रोज़ आने लगी और रमा खुद अपने ही जाल में फंस गया। उसने ज़ोहरा से प्रेम का ढोंग रच कर अफसरों की नज़रों में अच्छा बनना चाहा, लेकिन अब ज़ोहरा उसे मुहब्बत की देवी मालूम होती थी। ज़ोहरा ने रमा को मतवाला कर दिया।

ज़ोहरा हर रोज़ आती और बंधन में एक गांठ दे कर चली जाती। पुलिस के अफसर अब उसकी ओर से निश्चिंत हो गए। उस पर लगी पाबंदियां कम हो गईं। एक दिन रमा डिप्टी साहब के साथ सैर को निकला। मोटर हावड़ा के पुल की तरफ जा रही थी कि रमा ने एक औरत को सिर पर गंगा जल का कलसा रखे घाटों के ऊपर चढ़ते देखा। उसके कपड़े बहुत मैले हो रहे थे और इतनी कमज़ोर थी कि कलसे के बोझ से उसकी कमर दोहरी हो रही थी! कार आगे बढ़ी और रमा को जालपा का चेहरा नज़र आया। यह जालपा ही थी। उसने खिड़की के बगल में सिर झुका दिया। कितनी कमज़ोर जैसे कोई बूढ़ी हो। उसकी आंखें नम हो गईं। जालपा इस हालत में और उसके जीते जी। शायद देवीदीन ने उसे घर से निकाल दिया है और वह मज़दूरी करके गुज़र कर रही है। रमा सब कुछ भूल गया। उसकी आंखों के सामने तो बस मैले कपड़ों वाली, मुसीबत की मारी जालपा की सूरत थी। बंगले पर आया तो कुछ देर बाद ज़ोहरा आ गई और उदास देखकर उससे लिपट गई। रमा ने उसके सीने पर अपना सिर रख दिया और कहा, "तुमने मुझ बदनसीब पर जितना रहम किया,

मुझे ऐसे संभाला जब मेरी ज़िंदगी की टूटी हूई नाव डुबकी लगा रही थी। मैंने आज जालपा को जिस दशा में देखा है वह मेरे दिल को भाले की तरह छेद रहा है, मुझे अपनी ज़िंदगी में इतना दुख कभी नहीं हुआ था। कुछ नहीं कह सकता, उसपर क्या बीत रही है।"

ज़ोहरा : "वो तो उस मालदार खटिक के घर पर थी।"

रमा, "हां, थी मगर नहीं कह सकता, क्यों वहां से चली गई। मेरे साथ डिप्टी साहब थे, उनके सामने मैं कुछ न पूछ सका। मैं जानता हूं वह मुझे देखकर मुंह फेर लेती है। तुम अपने दिल में चाहे जो समझ रही हो लेकिन मैं इस विचार में मस्त हूं कि तुम्हें मुझसे मुहब्बत है। तुम मुझे गुमराह करने के लिए भेजी गई थी मगर तुम्हें मुझ पर रहम आ गया। तुम अगर चाहो तो जालपा का पूरा पता लगा सकती हो।"

ज़ोहरा बाज़ारी औरत थी मगर उस परदेशी नौजवान में उसे वह चीज़ मिली जिसका दूसरों में कहीं पता न था। वह पहला आदमी था जिसने उसके सामने अपना दिल खोल कर रख दिया। ज़ोहरा ने कहा, "ज़ोहरा तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार है। मैं कल ही जालपा को तलाश करूंगी। वह यहां रहना चाहेगी तो उनके हर तरह के आराम का इंतज़ाम कर दूंगी। जाना चाहेगी तो रेल पर बिठा दूंगी।"

रमा सारा दिन बेचैन रहा। कभी निराशा की अंधेरी खाइयां सामने आ जाती, कभी उम्मीद की लहराती हुई हरियाली। क्या ज़ोहरा जालपा की तलाश में गई होगी? रमा को अपनी ग़लती पर पछतावा हो रहा था जो उसने जालपा की बात न मान कर की थी। उसे आज मालूम हुआ कि वह जालपा को नहीं छोड़ सकता और ज़ोहरा को छोड़ना भी उसके लिए मुश्किल था। रात के दस बज गए मगर ज़ोहरा

का कहीं पता न था। फिर एक सप्ताह तक ज़ोहरा नही आई। आठवें दिन ज़ोहरा आ पहुंची। उसे देखकर रमा को आश्चर्य हुआ कि ज़ोहरा एक सफेद साड़ी पहने हुए है। एक भी ज़ेवर उसके शरीर पर न था। होंठ सूखे हुए थे।

जोहरा : "क्या मुझसे नाराज़ हो गए, इसलिए कि मैं इतने दिनों क्यों नहीं आई।"

रमा : "अगर तुम अब भी न आती तो मेरा क्या बस था।"

ज़ोहरा : "वाह, अच्छी दिल्लगी है। आप ही ने तो एक काम सौंपा और जब वह काम करके लौटी तो आप बिगड़ बैठे। वह काम तुमने आसान समझा था कि चुटकियों में पूरा हो जाता। तुमने मुझे उस औरत के पास भेजा था जो ऊपर से मोम है और अंदर से पत्थर।"

रमा : "है कहां, क्या करती है?"

ज़ोहरा : "उसी दिनेश के घर जिसे फांसी हो गई है। उसके दो बच्चे हैं, बीवी है और मां है। दिनभर उन्हीं के बच्चों को लिए रहती है। घर का सारा कामकाज करती है और जब फुर्सत पाती है तो उनके लिए चंदा मांगने निकल जाती है। वह परिवार बड़ी कठिनाई में था। सभी मुंह फेरे बैठे थे। जालपा ने उन्हें सहारा दिया।"

रमा : "बैठ जाओ, शुरू से कहो, एक बात भी मत छोड़ना। तुम पहले उसके पास कैसे पहुंचीं?"

ज़ोहरा : "पहले तो देवीदीन के घर गई। देवीदीन के घर से निकल कर मैं अपने घर गई और ब्राह्मण समाज की औरत का स्वांग भरा। मुझे डर था कि जालपा भांप न जाए। मैंने दिनेश के घर जाकर उसकी मां से बातचीत की। अपना घर मुंगेर बताया। बच्चों कि लिए मिठाई लेती गई थी। दोनों औरतें रोने लगीं। इतने में जालपा भी गंगा

जल लिए आ पहुंची। मैंने दिनेश की मां से बंगला में पूछा, यह कौन है? उसने कहा कि यह भी तुम्हारी ही तरह हम लोगों का दुख बंटाने आ गयी हैं। यहां इसका पति किसी दफ्तर में नौकर हैं। रोज़ आती है और बच्चों को घुमाने ले जाती है। मेरे लिए नदी से गंगा जल लाती है। हमारे आगे पीछे-कोई न था, बच्चे दाने-दाने को तरसते थे। जबसे ये आ गई है, हमें कोई कष्ट नहीं है। शाम हो गई तो जालपा देवी ने दोनों बच्चों को साथ लिया और पार्क चल पड़ी। मैं भी साथ गई। पार्क में मैंने बात की, "जालपा देवी, घर की दोनों औरतों से तुम्हारी तारीफ सुनकर मैं तुम्हारे ऊपर मोहित हो गई हूं।"

जालपा : "तुम बंगालिन नहीं मालूम होतीं। इतनी साफ हिंदी कोई बंगालिन नहीं बोलती।"

मैंने कहा, "मैं मुंगेर की रहने वाली हूं। यहां मुसलमान औरतों से मेरा बहुत मेलजोल है। आपसे मिलने को जी चाहता है। आप कहां रहती हैं, कभी कभी दो घड़ी के लिए चली आऊंगी। तुम्हारी संगति में शायद मैं भी आदमी बन जाऊं।"

जालपा : "तुम मुझे बनाने लगीं। बहन कहां तुम कालेज की पढ़ने वाली और कहां मैं अनपढ़ औरत। तुमसे मिलकर मैं आदमी बन जाऊंगी, जब जी चाहे चली आना।"

फिर नाम पूछा। नाम सुनकर चौकीं। इधर-उधर की बातें होती रहीं। इतने में अंधेरा हो गया। रास्ते में जालपा ने कहा, ज़ोहरा तुम समझती होगी कि मैं इन लोगों की सेवा कर रही हूं। यह बात नहीं है। मैं अपने पापों का प्रायश्चित कर रही हूं। मुझसे अधिक बदनसीब औरत इस दुनिया में न होगी। अगर इस समय तुम्हें मालूम हो जाए कि मैं कौन हूं तो शायद तुम नफरत से मुंह फेर लोगी। इन शब्दों में न जाने क्या जादू था। मेरे मन में आया कि अपना सारा भेद खोल

दूं। लेकिन पता नहीं किस तरह मैंने अपने आप को संभाल लिया। मैंने कहा कि यह तुम्हारा विचार ग़लत है देवीजी। शायद तब मैं तुम्हारे पैरों पर गिर पडूंगी। जालपा ने कहा, "तो कलेजा मज़बूत करके सुन लो कि एक मुखबिर की बदनसीब पत्नी हूं। हम लोग इलाहाबाद के रहने वाले हैं। एक ऐसी घटना हुई कि उन्हें वहां से भागना पड़ा।" दूसरे दिन उन्होंने पूरी कहानी सुनाई। जालपा ने अपनी कोई बात शायद ही छुपाई हो। कहने लगी। ज़ोहरा मैं बड़ी मुसीबत में हूं। मैं चाहूं तो आज इन सभी की जान बचा सकती हूं। बस दुविधा यही है क़ि न तो यह हो सकता है कि इन लोगों को मरने दूं और न यह हो सकता है कि रमा को आग में झोक दूं। अब हाईकोर्ट से क्या फैसला होता है, नहीं कह सकती। शायद उसी दिन ज़हर खाकर सो रहूं।" रमा ने चट-पट जूते पहने और ज़ोहरा से पूछा, "इस समय वह देवीदीन के घर ही होगी?"

ज़ोहरा : "क्या इसी समय जाओगे? सोच तो लो।"

रमा : "खूब सोच लिया। अधिक से अधिक झूठ बोलने के जुर्म में तीन, चार साल कैद। भूल मत जाना ज़ोहरा। शायद फिर कभी मुलाकात हो।"

रमा बरामदे से उतर कर आंगन में आया और एक क्षण में फाटक से बाहर था। चौकीदार ने लपक कर दरोगा से यह खबर कही। रमा ने तांगा लिया और देवीदीन के घर जा पहुंचा। रमा ने आवाज़ दी। देवीदीन ने कहा, "भैया हैं शायद।"

जालपा, "कह दो, यहां क्या करने आए हैं। वहां जाए।"

देवीदीन ने दरवाज़ा खोला। रमा ने अंदर आकर कहा, "दादा, एक घंटे की छुट्टी लेकर आया हूं। तुम लोगों से अपने बहुत से पापों को माफ कराना था। जालपा ऊपर है।"

देवी : "तुमसे कुछ कहना चाहते हैं बहू।"

जालपा : "तो कहते क्यों नहीं? क्या मैंने इनकी ज़बान बन्द कर दी है?"

यह सुनकर रमा नीचे ही खड़ा बोला, "मैं इस समय जज साहब के पास जा रहा हूं। उनसे सारी कहानी कहूंगा। मेरी बुद्धि पर पर्दा पड़ा हुआ था। शायद दो चार साल के लिए सरकार की मेहमानी करनी पड़े। जीता रहा तो फिर मुलाक़ात होगी। नहीं तो मेरी बुराइयों को माफ करना और भूल जाना। तुम भी दादा और अम्मा तुम भी, मेरे दोष को माफ कर देना।"

यह कह कर रमा चल दिया। जालपा नीचे उतरी लेकिन रमा का पता न था। वह कई मिनट तक सड़क पर खड़ी रही। इतने में ज़ोहरा आ गई और जालपा को सड़क पर देख कर बोली, "यहां कैसे खड़ी हो जालपा। आज तो मैं न आ सकी। चलो मुझे तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं।"

रमा के जाने के बाद दरोगा देवीदीन के घर पहुंच गए। पूरे घर में तलाश किया शायद रमा वहां छुपा बैठा होगा। ज़ोहरा को वहां देखकर उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "अरे ज़ोहरा, तुम यहां कहां? रमानाथ कहां गए?"

ज़ोहरा : "मैं अपनी डयूटी पूरी कर रही हूं। रमानाथ तो मेरे यहां आने से पहले ही चले गए थे।"

दरोग़ा : "अच्छा, ज़रा मेरे साथ आओ। उसका पता लगाना है।"

ज़ोहरा दरोगा जी के साथ चली तो उन्होंने पूछा, "जालपा कब तक यहां से जाएगी?"

ज़ोहरा : "मैंने खूब पट्टी पढ़ाई है। अब उसके यहां से जाने की जरूरत नहीं। रमानाथ ने बुरी तरह डांटा है।"

दरोगा :"तुम्हें घर तक पहुंचा दूं फिर डिप्टी साहब के पास जाता हूं।"

दरोगा जी डिप्टी साहब के पास नहीं गए और घर जाकर सो गए। दूसरे दिन टेलीफोन पर डिप्टी साहब दरोगा पर बहुत नाराज़ हुए कि तुमने रमा को क्यों जाने दिया। उसने जज से सब हाल कह दिया। मुकदमे की जांच फिर से होगी। ज़ोहरा ने भी धोखा दिया। अब रमानाथ का सारा सामान कमिश्नर साहब के पास भेज दो। वह किसी दूसरी जगह ठहराया जाएगा।

एक सप्ताह तक पुलिस अफसरों में बड़ी हलचल रही। मुकदमे से कहीं ज़्यादा अपनी चिंता थी। दरोगा साहब को अपने बचने की उम्मीद न थी क्योंकि डिप्टी और इंसपेक्टर ने सारा दोष उसके सिर डाल दिया था। सारे शहर में यह ख़बर फैल गई। उस मुकदमे की दोबारा पेशी होगी। पुलिस वाले रमा की तलाश में रात दिन फिरते रहते थे लेकिन वह न जाने कहां छिप गया था। एक अखबार के संपादक ने जालपा से मुलाकात की और उसका बयान प्रकाशित कर दिया। दूसरे अखबार ने ज़ोहरा का बयान छाप दिया कि मुझे सिर्फ इसलिए पचास रुपए रोज़ दिए जाते थे कि रमानाथ को बहलाती रहूं और कुछ सोचने या करने का मौका न मिले।

आखिर दो महीने के बाद फैसला हुआ। पुलिस ने एड़ी चोटी का जोर लगाया कि अपराधियों में कोई मुखबिर बन जाए मगर सफलता न मिली। आखिर मजबूर होकर पुलिस को मुकदमा उठा लेना पड़ा। जिस दिन अपराधियों को बरी किया गया, आधा शहर जमा था। पुलिस ने उन्हें दस बजे रात को छोड़ा लेकिन लोग जमा हुए और जालपा को खींच कर ले गए। उस पर फूलों की बारिश हो रही थी।

चैत की सुहानी शाम, गंगा का किनारा, टेसुओं से लहलहाता

हुआ ठाक का मैदान, एक बरगद का छतनवर पेड़, उसके नीचे बंधी हुई गाय भैंस, कददू और लौकी की बेलों से लहराती हुई झोपड़ियां। देवीदीन और रमानाथ यहीं बस गए हैं। तीन साल बीत गए हैं। देवीदीन ने ज़मीन खरीदी, बाग़ लगाया, खेती जमाई, मवेशी जमा किए। शाम हो गई मवेशी लौटे, जग्गू ने उन्हें खूंटे से बांधकर थोड़ा-थोड़ा भूसा लाकर उनके सामने डाल दिया। देवीदीन और गोपी भी बैलगाड़ी पर पोले लादे हुई आ पहुंचे। रमानाथ ने बरगद के नीचे ज़मीन साफ कर रखी, वहीं पोले उतारे गए। यही उस छोटी सी बस्ती का खलियान है। दयानाथ अब देवीदीन के असिस्टेंट हैं। आस पास के गांव के दस-पांच आदमी रोज़ आ जाते हैं। रोज एक छोटी-मोटी सभा होती है। रमानाथ रोज़ सुबह उठ कर गंगा स्नान करता है और दिन निकलते-निकलते अपने उपचार केंद्र में आ बैटता है। उसने वैद्यिकी की दो-चार किताबें पढ़ ली हैं और छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज कर लेता है।

देवीदीन ने बैलों को गाड़ी से खोल कर खूंटे से बांध दिया और दयानाथ से बोला, "अभी भैया नहीं आए?"

दयानाथ : "अभी नहीं। मुझे तो अब उसके अच्छे होने की उम्मीद नही है। ज़माने का फेर है। वकील साहब ने अच्छी जायदाद छोड़ी थी मगर भाई-भतीजों ने सब हड़प कर ली।"

देवी : "भैया कहते थे, अदालत करती तो सब मिल जाता। मगर कहती है, मैं अदालत में झूठ न बोलूंगी।" अचानक जागेशरी ने आकर कहा, "ज़रा चल कर रतन को देखो, ज़ोहरा और बहू दोनों रो रही हैं।"

देवीदीन ने रतन की कोठरी में जाकर देखा। शरीर सूख कर कांटा हो गया था। ज़ोहरा उसके ऊपर झुकी हुई उसे देख रही थी।

सालभर से उसने रतन की देखभाल में अपने आप को न्योछावर कर दिया है।

ज़ोहरा, "क्या बाबू जी अभी बैद्य को लेकर नहीं लौटे?"

देवीदीन ने धीरे से कहा कि इनकी दवा अब वैद्य के पास नहीं है। यह कहकर उसने थोड़ी से राख ली, कुछ मुंह ही मुंह बुदबुदाया और राख उसके माथे पर लगा दी। तब पुकारा, "बेटी रतन, आंखें खोलो।"

रतन ने आंखें खोल दीं और इधर-उधर देखकर बोली, "मेरी मोटर आई थी ना? कहां गया वह आदमी? उससे कह दो थोड़ी देर बाद लाए। ज़ोहरा आज में तुम्हें अपनी बागीचे की सैर कराऊंगी।"

ज़ोहरा फिर रोने लगी। जालपा भी आंसू न रोक सकी। उसी समय मौत ने रतन की ज़िंदगी पर पर्दा डाल दिया। रमानाथ वैद्य जी को लेकर रात को लौटा तो मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। रतन के बाद ज़ोहरा अकेली रह गई। दोनों साथ-साथ सोती थीं, काम करती थी। अब ज़ोहरा का मन किसी काम में न लगता। कभी दरिया के किनारे जाकर रतन को याद करती और रोती। कभी उस आम के पौधे के पास जाकर घंटों खड़ी रहती जिसे उन दोनों ने लगाया था। जालपा को बच्चे की परवरिश और घर के काम काज से इतनी फुर्सत न मिलती कि उसके साथ देर तक बैठती। अगर दोनों साथ होती तो रतन की चर्चा ज़रूर होती और दोनों रोने लगती।

भादों का महीना, गंगा गांव और कस्बा को निगल रही थी। गांव के गांव बहते चले जाते थे। ज़ोहरा नदी के किनारे बैठी सैलाब का तमाशा देख रही थी। अचानक एक नाव नज़र आई। उस पर कई मर्द औरत बैठे हुए थे, बैठे क्या चिपटे हुए थे। नाव डोल रही थी। बस यही मालूम होता था कि अब उल्टी तब उलटी। किनारों के दोनों

तरफ से आदमी रस्सियां फेंकने की कोशिश कर रहे थे। अचानक नाव उलट गई। मर्द और औरत डूबते नज़र आए। सिर्फ एक सफेद सी चीज़ किनारे की ओर आ रही थी। एक ही रेले में वह किनारे से कोई तीस ग़ज करीब आ गई। मालूम हुआ, कोई औरत है। उसकी गोद में बच्चा भी नज़र आ रहा था। जालपा और रमानाथ भी आ गए। तीनों ही बेचैन थे कि उन्हें गंगा के मुंह से कैसे निकाला जाए। रमानाथ तैरना जानता था लेकिन लहरों से मुकाबला करने की हिम्मत न पड़ती थी।

ज़ोहरा ने कहा, "अभी दोनों जिंदा हैं जालपा।" और यह कह कर वह पानी में चल पड़ी।

रमानाथ ने शर्मिंदा होकर कहा, "तुम कहां जाती हो ज़ोहरा। तैयार तो मैं भी था लेकिन वहां तक पहुंच भी सकूंगा इसमें संदेह है।"

ज़ोहरा : "नहीं तुम न आना। मैं अभी निकाल लाती हूं।"

ज़ोहरा हाथ-पैर मार कर करीब पहुंच चुकी थी। इतने में एक लहर आई और ज़ोहरा कई हाथ बहाव की ओर चली गई। वह फिर संभली और तभी एक दूसरे रेले ने फिर उसे ढकेल दिया। वह किसी तरह न संभल सकी। उसने चीख मारी और पानी में समा गई। रमा बेचैन होकर पानी में कूद पड़ा और ज़ोर-जोर से पुकारने लगा, ज़ोहरा, ज़ोहरा, मैं आता हूं। मगर ज़ोहरा में अब लहरों से संघर्ष करने की ताक़त न थी। वह फिर बाहर निकली। अचानक एक ऐसा रेला आया कि वह बीच धार में जा पहुंची। अब सिर्फ उसके सिर के बाल नज़र आ रहे थे। फिर वह निशान भी गायब हो गया। रमा एक सौ ग़ज तक हाथ पांव मारता गया लेकिन उसका दम फूल गया।

अब आगे कहां जाए, ज़ोहरा का कहीं पता न था।

किनारे पर जालपा खड़ी हाय-हाय कर रही थी। आखिर वह भी पानी में घुसी। रमा अब आगे न बढ़ सका। वह लौट पड़ा। कई मिनट तक जालपा और रमा घुटनों तक पानी में खड़े उसी ओर ताकते रहे।

आखिर रमा ने कहा, "पानी में से निकलो, ठंड लग जाएगी।"

जालपा पानी से बाहर निकल कर किनारे पर खड़ी हो गई पर मुंह से कुछ न बोली। मौत के इस तमाचे ने उसे सुन्न कर दिया था। रतन की मौत का उसे पहले ही मालूम था कि वह थोड़े दिनों की मेहमान है मगर ज़ोहरा की मौत तो बिजली की चोट थी। इतने दिनों में ज़ोहरा ने अपनी सेवा से सभी का दिल मोह लिया था। सभी उसके साथ घर के आदमी जैसा व्यवहार करते थे। मुंशी दयानाथ और जागेशरी को यह बताया गया था कि वह देवीदीन की विधवा बहू है।

थोड़ी देर बाद रमा भी पानी से निकला और मातम में डूबा घर की ओर चला। उसके बाद वह और जालपा प्रायः नदी के किनारे आ बैठते और जहां ज़ोहरा डूबी थी, वहां घंटों देखा करते।

प्रिन्टकाम, कालकाजी, नयी दिल्ली द्वारा लेजर कपोज
तथा शिवम् ऑफसेट प्रेस नारायणा नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित।